KALIKAAL

कलिकाल सर्वज्ञ

SARVAGYA

श्री प्रियदर्शन

कलिकाल सर्वज्ञ

(बाल भोग्य शैली में आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी का जीवन-कवन)

श्री प्रियदर्शन

[*आचार्य श्री विजयभद्रगुप्तसूरिजी महाराज*]

भावानुवाद

भद्रबाहु विजय

पुनः संपादन

ज्ञानतीर्थ-कोबा

द्वितीय आवृत्ति

वि.सं.२०६५, ३१ अगस्त-२००९

मंगल प्रसंग

राष्ट्रसंत श्रुतोद्धारक आचार्यदेवश्री पद्मसागरसूरिजी
का ७५वाँ जन्मदिवस
तिथि : भाद्र. सुद-११ दि. ३१-८-२००९, सांताक्रूज, मुंबई

मूल्य

पक्की जिल्द : रु. १२०-०० कच्ची जिल्द : रु. ५५-००

आर्थिक सौजन्य

शेठ श्री निरंजन नरोत्तमभाई के स्मरणार्थ
ह. शेठ श्री नरोत्तमभाई लालभाई परिवार

प्रकाशक

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, ता. जि. गांधीनगर - ३८२००७
फोन नं. (०७९) २३२७६२०४, २३२७६२५२
email : **gyanmandir@kobatirth.org**
website : **www.kobatirth.org**

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टर्स, अमदावाद - ९८२५५९८८५५

टाईटल डीजाइन : आर्य ग्राफीक्स - ९९२५८०१९१०

पूज्य आचार्य भगवंत श्री विजयभद्रगुप्तसूरीश्वरजी

श्रावण शुक्ला १२, वि.सं. १९८९ के दिन पुदगाम महेसाणा (गुजरात) में मणीभाई एवं हीराबहन के कुलदीपक के रूप में जन्मे मूलचन्दभाई, जुही की कली की भांति खिलती-खुलती जवानी में १८ बरस की उम्र में वि.सं. २००७, महावद ५ के दिन राणपुर (सौराष्ट्र) में आचार्य श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजा के करमकमलों द्वारा दीक्षित होकर पू. भुवनभानुसूरीश्वरजी के शिष्य बने. मुनि श्री भद्रगुप्तविजयजी की दीक्षाजीवन के प्रारंभ काल से ही अध्ययन-अध्यापन की सुदीर्घ यात्रा प्रारंभ हो चुकी थी. ४५ आगमों के सटीक अध्ययनोपरांत दार्शनिक, भारतीय एवं पाश्चात्य तत्वज्ञान, काव्य-साहित्य वगैरह के 'मिलस्टोन' पार करती हुई वह यात्रा सर्जनात्मक क्षितिज की तरफ मुड़ गई. 'महापंथनो यात्री' से २० साल की उम्र में शुरु हुई लेखनयात्रा अंत समय तक अथक एवं अनवरत चली. तरह-तरह का मौलिक साहित्य, तत्वज्ञान, विवेचना, दीर्घ कथाएँ, लघु कथाएँ, काव्यगीत, पत्रों के जरिये स्वच्छ व स्वस्थ मार्गदर्शन परक साहित्य सर्जन द्वारा उनका जीवन सफर दिन-ब-दिन भरापूरा बना रहता था. प्रेमभरा हँसमुख स्वभाव, प्रसन्न व मृदु आंतर-बाह्य व्यक्तित्व एवं बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय प्रवृत्तियाँ उनके जीवन के महत्त्वपूर्ण अंगरूप थी. संघ-शासन विशेष करके युवा पीढ़ी, तरुण पीढ़ी एवं शिशु-संसार के जीवन निर्माण की प्रकिया में उन्हें रूचि थी... और इसी से उन्हें संतुष्टि मिलती थी. प्रवचन, वार्तालाप, संस्कार शिबिर, जाप-ध्यान, अनुष्ठान एवं परमात्म भक्ति के विशिष्ट आयोजनों के माध्यम से उनका सहिष्णु व्यक्तित्व भी उतना ही उन्नत एवं उज्ज्वल बना रहा. पूज्यश्री जानने योग्य व्यक्तित्व व महसूस करने योग्य अस्तित्व से सराबोर थे. कोल्हापुर में ता. ४-५-१९८७ के दिन गुरुदेव ने उन्हें आचार्य पद से विभूषित किया. जीवन के अंत समय में लम्बे अरसे तक वे अनेक व्याधियों का सामना करते हुए और ऐसे में भी सतत साहित्य सर्जन करते हुए दिनांक १९-११-१९९९ को श्यामल, अहमदाबाद में कालधर्म को प्राप्त हुए.

प्रकाशकीय

पूज्य आचार्य श्री विजयभद्रगुप्तसूरिजी महाराज (श्री प्रियदर्शन) द्वारा लिखित और विश्वकल्याण प्रकाशन, महेसाणा से प्रकाशित साहित्य, जैन समाज में ही नहीं अपितु जैनेतर समाज में भी बड़ी उत्सुकता और मनोयोग से पढ़ा जाने वाला लोकप्रिय साहित्य है.

पूज्यश्री ने १९ नवम्बर, १९९९ के दिन अहमदाबाद में कालधर्म प्राप्त किया. इसके बाद विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट को विसर्जित कर उनके प्रकाशनों का पुनः प्रकाशन बन्द करने के निर्णय की बात सुनकर हमारे ट्रस्टियों की भावना हुई कि पूज्य आचार्य श्री का उत्कृष्ट साहित्य जनसमुदाय को हमेशा प्राप्त होता रहे, इसके लिये कुछ करना चाहिए. **पूज्य राष्ट्रसंत आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी महाराज** को विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्टमंडल के सदस्यों के निर्णय से अवगत कराया गया. दोनों पूज्य आचार्यश्रीयों की घनिष्ठ मित्रता थी. अन्तिम दिनों में दिवंगत आचार्यश्री ने राष्ट्रसंत आचार्यश्री से मिलने की हार्दिक इच्छा भी व्यक्त की थी. पूज्य आचार्यश्री ने इस कार्य हेतु व्यक्ति, व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व के आधार पर सहर्ष अपनी सहमती प्रदान की. उनका आशीर्वाद प्राप्त कर कोबातीर्थ के ट्रस्टियों ने इस कार्य को आगे चालू रखने हेतु विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट के सामने प्रस्ताव रखा.

विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट के ट्रस्टियों ने भी कोबातीर्थ के ट्रस्टियों की दिवंगत आचार्यश्री प्रियदर्शन के साहित्य के प्रचार-प्रसार की उत्कृष्ट भावना को ध्यान में लेकर **श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबातीर्थ** को अपने ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित साहित्य के पुनः प्रकाशन का सर्वाधिकार सहर्ष सौंप दिया.

इसके बाद **श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा** ने संस्था द्वारा संचालित **श्रुतसरिता** (जैन बुक स्टॉल) के माध्यम से श्री प्रियदर्शनजी के लोकप्रिय साहित्य के वितरण का कार्य समाज के हित में प्रारम्भ कर दिया.

श्री प्रियदर्शन के अनुपलब्ध साहित्य के पुनः प्रकाशन करने की शृंखला में **कलिकाल सर्वज्ञ** ग्रंथ को प्रकाशित कर आपके कर कमलों में प्रस्तुत किया जा रहा है.

शेठ श्री संवेगभाई लालभाई के सौजन्य से इस प्रकाशन के लिये **श्री निरंजन नरोत्तमभाई के स्मरणार्थ, हस्ते शेठ श्री नरोत्तमभाई लालभाई परिवार** की ओर से उदारता पूर्वक आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है, इसलिये हम **शेठ श्री नरोत्तमभाई लालभाई परिवार** के ऋणी हैं तथा उनका हार्दिक आभार मानते हैं. आशा है कि भविष्य में भी उनकी ओर से सदैव उदारता पूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहेगा.

इस आवृत्ति का प्रूफरिडिंग करने वाले **डॉ. श्री हेमंतकुमार सिंघ** तथा अंतिम प्रूफ करने हेतु **पंडितवर्य श्री मनोजभाई जैन** का हम हृदय से आभार मानते हैं. संस्था के कम्प्यूटर विभाग में कार्यरत **श्री केतनभाई शाह, श्री संजयभाई गुर्जर व श्री बालसंग ठाकोर** के हम हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने इस पुस्तक का सुंदर कम्पोजिंग कर छपाई हेतु बटर प्रिंट निकाला.

आपसे हमारा विनम्र अनुरोध है कि आप अपने मित्रों व स्वजनों में इस प्रेरणादायक सत्साहित्य को वितरित करें. श्रुतज्ञान के प्रचार-प्रसार में आपका लघु योगदान भी आपके लिये लाभदायक सिद्ध होगा.

पुनः प्रकाशन के समय ग्रंथकारश्री के आशय व जिनाज्ञा के विरुद्ध कोई बात रह गयी हो तो मिच्छामि दुक्कड़म्. विद्वान पाठकों से निवेदन है कि वे इस ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करें.

अन्त में नये आवरण तथा साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत ग्रंथ आपकी जीवनयात्रा का मार्ग प्रशस्त करने में निमित्त बने और विषमताओं में भी समरसता का लाभ कराये ऐसी शुभकामनाओं के साथ...

ट्रस्टीगण

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा

पूर्वभूमिका

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी का जीवन चरित्र लिखना यानी महासागर को तैरने जैसा कठिन कार्य है। किन्तु आचार्यदेव के प्रति मेरे मनकी अपार श्रद्धा एवं अमाप भक्ति ने ही मुझे यह चरित्र लिखने के लिए प्रेरित किया है - प्रोत्साहित किया है।

इस चरित्र रचना के आधारभूत ग्रंथ है :

(१) श्री जयसिंहसूरि विरचित **'कुमारपाल भूपाल चरित्र'**

(२) श्री राजशेखरसूरि प्रणित **'चतुर्विंशति प्रबन्ध'** और

(३) श्री मेरुतुंगाचार्य रचित **'प्रबन्ध चिन्तामणि'**

गुजरात या भारत के इतिहास में इन सच्ची-बिलकुल सत्य घटनाओं को समाविष्ट नहीं की गई हैं। इसके पीछे जैन समाज व संस्कृति के प्रति इतिहास लिखनेवालोंकी पूर्वग्रहबद्ध मानसिकता ही कारणभूत है। अधिकतर इतिहास विदेशी विद्वानों के द्वारा लिखा गया है, और हमारे तथाकथित शिक्षाशास्त्री लकीर के फकीर बनकर विदेशी नजरिये से लिखे गये आधा सच - आधा झूठ इतिहास को विद्यालयों में पढ़ाते है। इससे बच्चों को पुरातन मूल्यों को उजागर करनेवाली संस्कारप्रेरक बातें पढ़ने को मिलती नहीं है। इस धरती के उपवन को संस्कार वृक्षों से हराभरा बनाने में जैन व्यक्तित्वों का कितना महत्वपूर्ण योगदान है, यह न तो जैन लोग जानते है, न ही अन्य धर्मावलम्बी!

श्री हेमचन्द्राचार्य का व्यक्तित्व अद्‌भुत था। उनका समग्र जीवन तेजोमय था। आचार्यदेव में आध्यात्मिक धवलिमा के साथ साथ अपूर्व मानवता की महक थी। आचार्यदेव के सौम्य-समयानुलक्षी उपदेश के आगे एवं आचार्यदेव के निर्मल-शुभ व्यक्तित्व के समक्ष गूर्जरेश्वर सिद्धराज की उत्कट महत्वाकांक्षाएं और उसकी स्वभावगत उग्रता शांत हो जाया करती थी।

श्री हेमचन्द्राचार्यजी की अपूर्व उपदेश शक्ति से राजा कुमारपाल के मन का समाधान हुआ था। उनकी वीतराग-स्तवना से राजा का चित्त सात्विक बन गया था। योगशास्त्र के अध्ययन ने राजा ने उत्तरावस्था में मनः प्रसाद प्राप्त किया था।

कुमारपाल के द्वारा आचार्यदेवने अहिंसा धर्म के प्रवर्तन का महान कार्य किया था, जो कि हजारों बरसों के इतिहास में अद्वितीय था!

यह जीवन-चरित्र सविशेष तो बच्चों को सामने रखकर लिखा है। इसलिए भाषा सरल एवं शैली सहज रखने की कोशिश की है! सफलता या असफलता का निर्णय तो पाठक ही कर सकेंगे।

इस चरित्र के आलेखन में यदि कोई त्रुटि रही हो... क्षति रही हो तो क्षमा मांगता हूँ।

इस चारित्र के पठन पाठन से सभी को अनेकविध सत्प्रेरणाएं प्राप्त हो, यही एकमेव मंगल कामना।

कलिकाल सर्वज्ञ

आचार्यदेव श्री हेमचन्द्रसूरिजी का परिचय

❁ जन्म	:	विक्रम संवत् ११४५
❁ जन्म-स्थान	:	धंधुका (गुजरात)
❁ माता	:	पाहिणीदेवी
❁ पिता	:	श्रेष्ठी चाचेग
❁ बचपन नाम	:	चंगदेव
❍ दीक्षा	:	विक्रम संवत् ११५४
❍ दीक्षा स्थान	:	खंभात (गुजरात)
❍ गुरुदेव	:	आचार्यश्री देवचन्द्रसूरिजी
❍ दीक्षा नाम	:	मुनि सोमचन्द्र
❍ स्वर्गवास	:	विक्रम संवत १२२९
❍ स्वर्गवास भूमि	:	पाटन (गुजरात)
❍ मुख्य पट्टशिष्य	:	आचार्य श्री रामचन्द्रसूरिजी

अनुक्रम

१. चंगदेव १
२. सरस्वती की साधना ८
३. कोयला बने सोनामुहर १३
४. देवी प्रसन्न होती है!.....१९
५. 'सिद्धहेम' व्याकरण की रचना २६
६. गुरुदेव की निःस्पृहता ३२
७. तीर्थयात्रा ३६
८. कृपालु गुरुदेव ४१
९. कुमारपाल का जन्म ४६
१०. गुरुदेव ने जान बचायी! ५१
११. कुमारपाल का राज्याभिषेक ५७
१२. सोमनाथ महादेव प्रगट हुए ६३
१३. देवबोधि की पराजय ७०
१४. काशीदेश में अहिंसा-प्रचार ७८
१५. राजा का रोग मिटाया ८६
१६. जिनमंदिरों का निर्माण ९३
१७. आकाशमार्ग से भरुच में ९९
१८. डायनों को मात दी १०७
१९. सटीक भविष्यवाणी ११३
२०. बादशाह का अपहरण ११९
२१. धर्मश्रद्धा के चमत्कार १२६
२२. अपूर्व साधर्मिक उद्धार १३१
२३. सच्ची सुवर्णसिद्धि १३५
२४. पाँच प्रसंग १४०
२५. गत जनम की बात १४८
२६. सूरिदेव का स्वर्गवास १५६

१. चंगदेव

आज से नौ सौ बरस पुरानी यह कहानी है।

यह कोई काल्पनिक कहानी नहीं है... यह ऐतिहासिक कहानी है। इतिहास के अनखुले-अधखुले पन्नों पर सुवर्णाक्षर में लिखी गई है, यह कहानी!

गुजरात में 'धंधुका' नाम का नगर था, जो आज भी है! उस नगर में चाचग नामक सेठ रहते थे। वे गुणवान और धार्मिक थे। उनकी पत्नी थी पाहिनी देवी। पाहिनी देवी स्वयं गुणवती-शीलवती सन्नारी थी। उसके दिल में जैन धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा थी साथ ही... श्रद्धापूर्ण समर्पण भी था।

एक दिन रात के चौथे पहर में पाहिनी ने स्वप्न देखा।

उसे दो दिव्य हाथ दिखाई दिये।

दिव्य हाथों में दिव्य रत्न था।

'यह चिंतामणि रत्न है, तू ग्रहण कर !' कोई दिव्य आवाज़ उभरी। पाहिनी ने चिंतामणि रत्न ग्रहण किया।

वह रत्न लेकर अपने उपकारी गुरुदेव आचार्य श्रीदेवचन्द्रसूरिजी के पास जाती है।

'गुरुदेव, आप यह रत्न ग्रहण कीजिए।'

वह रत्न गुरुदेव को अर्पण कर देती है...।

उसकी आँखों में खुशी के आँसू छलछला उठे।

स्वप्न पूरा हो जाता है... वह सहसा जागती है... पलंग पर बैठकर श्री नवकार मंत्र का स्मरण करती है...स्वप्न को याद करती है... वह सोचती है :

'गुरुदेव नगर में पधारे हुए हैं... मैं उन्हें मेरे स्वप्न की बात करूँ!'

उसने स्नान किया। सुन्दर वस्त्र पहने। वह गुरुदेव श्रीदेवचन्द्रसूरिजी के पास गई।

पाहिनी ने गुरुदेव को वंदना करके विनयपूर्वक अपने स्वप्न की बात कही। गुरुदेव ने कहा :

'पाहिनी, तूने बहुत ही सुन्दर स्वप्न देखा है। तुझे श्रेष्ठ रत्न जैसा पुत्र

प्राप्त होगा। स्वप्न में तूने वह रत्न मुझे दिया है... अर्थात् तू अपना पुत्र मुझे देगी। वह तेरा पुत्र जिनशासन का महान् आचार्य बनेगा। जिनशासन की शान बढ़ाएगा।'

पाहिनी खुश-खुश हो उठी। उसे गुरुदेव पर श्रद्धा थी। वह समझती थी... 'सच्चा सुख साधु जीवन में ही है।' इसलिए उसका होनेवाला होनहार बेटा भविष्य में महान् आचार्य बनेगा... इस भविष्यकथन ने उसे भावविभोर बना डाला।

उसने तुरन्त ही अपनी साड़ी के छौर में गांठ बाँध ली। गांठ लगाकर उसने जैसे स्वप्न को बाँध लिया।

गुरुदेव को भावपूर्वक वंदना करके वह अपने घर पर आई।

उसी रात उसके पेट में आकाश में से कोई उत्तम जीव अवतरित हुआ, जैसे कि किसी सुन्दर से सरोवर में कोई राजहंस उतर आया हो!

पाहिनी गर्भवती हुई।

उसका सौन्दर्य दिन-प्रतिदिन निखरने लगा।

वह रोती नहीं है... आँखों में काज़ल नहीं लगाती है... वह न तो दौड़ती है... न तेजी से कदम उठाती है। वह सम्हलकर बैठती है... सम्हलकर खड़ी होती है...। ज्यादा खट्टा-खारा नहीं खाती है...। न ज्यादा तीखा-चटपटा या ठंढ़ा-गरम खाती है !

'मेरे गर्भ में रहे हुए मेरे पुत्र को किसी भी प्रकार की तकलीफ़ नहीं होनी चाहिए... उसके निर्मित हो रहे देहपिंड में कोई विकलता नहीं रहनी चाहिए।' इसलिए वह ये सारी सावधानियाँ बरतती है। उसे रोज़ाना जिनमंदिर जाने की और परमात्मा की पूजा करने की इच्छा होती है। वह नित्य परमात्मा की पूजा करती है। उसे प्रतिदिन गरीबों को दान देने की इच्छा होती है... वह दिल खोलकर दान देती है।

उसे प्रतिदिन अतिथि को भोजन करवाने की इच्छा होती है... और वह हररोज जो भी अतिथि आये उसे भावपूर्वक खाना खिलाती है।

वह सब के साथ मीठा-मीठा - मधुर बोलती है।

वह अपने पति चाचग के साथ तत्त्वज्ञान की चर्चा करती है।

उसे ज्ञानी पुरुषों की बातें सुननी अच्छी लगती हैं...।

चाचग भी पाहिनी की हर एक इच्छा को पूरी करता है।

यों करते हुए नौ महीने बीत गये।

विक्रम संवत ११४५ का वह वर्ष था।

कार्तिक पूर्णिमा का धन्य दिवस था।

पाहिनी ने पुत्र को जन्म दिया।

पूनम के चाँद से सौम्य और रुई के ढेर से गोरे-गोरे नवजात शिशु को देखकर पाहिनी पागल सी हो उठी।

उसी वक्त आकाश में देववाणी हुई : 'पाहिनी और चाचग का यह नवजात शिशु, तत्त्व का ज्ञाता होगा और तीर्थंकर की भाँति जिनधर्म का प्रसारक होगा।'

आकाशवाणी यानी देव की वाणी।

देव की वाणी सच होती ही है। देववाणी सुनकर चाचग, पाहिनी और अन्य लोग प्रसन्न हो उठे।

चाचग ने पुत्र जन्म की खुशी में महोत्सव मनाया।

बारहवें दिन बच्चे की फूफी ने नाम रखा : 'चंगदेव!'

चंगदेव मनमोहक रूपवान था। वह सभी के मन को मोह लेता था! वह हँसता...खिलखिलाता हो, तब लगता जैसे जूही के फूल झर रहे हों!

पाहिनी रोजाना चंगदेव को स्नान करवा के स्वच्छ रखती। उसे सुन्दर कपड़े पहनाती... उसे किसी की बुरी नजर न लग जाए इसलिए गाल पर काजल का छोटा सा बिन्दु रचाती! चाचग सेठ चंगदेव के लिए नये-नये खेल-खिलौने लाते थे!

पाहिनी ने सर्वप्रथम चंगदेव को 'अरिहंत' का 'अ' बोलना सिखाया... इसके बाद 'नमो अरिहंताणं' का 'न' बोलना सिखाया। 'मा' बोलना तो वह खुद ही सीख गया था!

पाहिनी चंगदेव को लेकर मंदिर में जाती है...।

'बेटा, ये भगवान हैं, दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करो... सिर झुकाओ। पाहिनी चंगदेव को भगवान की पहचान करवाती है, वंदना करना सिखाती है...।

पाहिनी चंगदेव को साधु मुनिराज के पास ले जाती है...।

'बेटा, ये अपने गुरु महाराज हैं, गुरूदेव हैं...। इन्हें दोनों हाथ जोड़ो... सिर झुकाकर वंदना करो...।' चंगदेव गुरुदेव को वंदना करता है...। गुरुदेव के सामने देखकर मुस्कुराता है...हँसता है...। गुरूदेव भी मीठे स्वर में 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद देकर उसके सिर पर वात्सल्यभरा हाथ रखते हैं!

चंगदेव बड़ा होता जाता है...।

उसे पढ़ने के लिए पाठशाला में भेजा जाता है।

वह एकबार जो भी सुनता है...उसे याद हो जाता है।

वह शिक्षक के एक-एक प्रश्न का सही जवाब देता है...।

शिक्षक की विनय करता है...।

शिक्षक का लाड़ला हो जाता है।

शिक्षक चंगदेव की बुद्धि और उसके गुणों की प्रशंसा करते हैं...।

एक दिन की बात है :

पाँच साल का चंगदेव माता पाहिनी के साथ जिनमंदिर गया हुआ था। जिनमंदिर में देववंदन करने के लिए आचार्यदेव श्रीदेवचन्द्रसूरिजी भी पधारे हुए थे।

आचार्यदेव के शिष्य ने आचार्यदेव को बैठने के लिए आसन बिछाया था। आचार्यदेव परमात्मा को प्रदक्षिणा दे रहे थे। पाहिनी एक ओर खड़ी-खड़ी परमात्मा की स्तवना कर रही थी। उसी समय चंगदेव ने एक शरारत की...।

वह जाकर सीधे ही आचार्यदेव के आसन पर जम गया! उस पर एक साथ पाहिनी और आचार्यदेव की दृष्टि पड़ी। पाहिनीदेवी आगे बढ़े इससे पहले तो आचार्यदेव हँस पड़े! चंगदेव भी खिलखिलाने लगा। आचार्यदेव ने पाहिनी से कहा :

'श्राविका, तुझे याद आ रहा है तेरा स्वप्न? तुझे चिंतामणि रत्न मिला था... वह रत्न तूने मुझे दे दिया था!'

'हाँ गुरूदेव, स्मृतिपथ में आ गया वह स्वप्न!'

'उसी स्वप्न का यह सूचक है। तेरा लाड़ला खुद ही मेरे आसन पर बैठ गया है! भविष्य में वह मेरी पाट पर बैठनेवाला है ना? पाहिनी! यह तेरा पुत्र जिनशासन का महान् प्रभावक आचार्य होने वाला है...। तू मुझे सौंप दे इस पुत्र को!'

चंगदेव आसन पर से उठकर पाहिनी की उँगली थामकर खड़ा रहा। उसकी नज़र तो आचार्यदेव पर ही टिकी हुई थी। आचार्यदेव भी चंगदेव के चेहरे की तेजस्वी रेखाओं को पढ़ रहे थे। पाहिनी नीची निगाह किये दानों हाथ जोड़कर खड़ी थी।

आचार्यदेव ने कहा :

'पाहिनी, सूर्य और चन्द्र को घर में रखा जा सकता है क्या? और यदि सूर्य-चन्द्र घर में रहे तो फिर वे दुनिया को रोशनी दे सकेंगे क्या? तेरा पुत्र सूर्य जैसा तेजस्वी और चन्द्र जैसा सौम्य है। उसका जन्म घर में रहने के लिए नहीं वरन् जिनशासन के गगन में चमकने-दमकने के लिए हुआ है। यह सितारा बनकर तब तक चमकता रहेगा जब तक जिनशासन रहेगा...। इसलिए इसका लगाव तुझे छोड़ना होगा, पाहिनी! इसका मोह कम करना होगा।'

पाहिनी ने कहा :

'आपकी बात मैं मानती हूँ...। मैं तो खुश हूँ...। मेरा लाल यदि जिनशासन की शान हो इससे बढ़कर मेरे लिए और कौन सी खुशी हो सकती है? पर गुरुदेव, आप चंगदेव के पिता से चंगदेव के लिए माँग करें।'

'ठीक है, मैं उनके साथ बात करूँगा।'

पाहिनी चंगदेव को लेकर घर पर आई।

आचार्यदेव परमात्मा की स्तवना में लीन हो गये।

कुछ दिन बीत गये।

एक दिन आचार्यदेव ने चाचग सेठ को उपाश्रय में बुलाया। उनसे कहा :

'चाचग, तुम्हारा बेटा चंगदेव भाग्यशाली है... उसका भविष्य काफी उज्ज्वल है।'

'गुरुदेव, आपका कथन सच हो!' चाचग ने हर्षान्वित होकर कहा।

'महानुभाव, कथन को सच करने के लिए... तुम्हें चंगदेव का मोह उतारना होगा...।'

'यानी गुरुदेव?'

'चंगदेव को मुझे सौंपना होगा। वह हीरा है...मुझे उसे तराशना होगा। वह मेरे पास रहेगा।'

चाचग सोच में डूब गये। उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया।

'क्या सोच रहे हो, चाचग?'

'गुरुदेव, मैं सोचकर जवाब दूँगा।'

'ठीक है, सोचकर जवाब देना। पर पुत्र की ममता को सामने रखकर मत सोचना...। पुत्र के हित को लेकर सोचना। तुम्हारा यह अकेला पुत्र लाखों जीवों का तारनहार होगा... लाखों जीवों को अभयदान देनेवाला होगा।'

चाचग सेठ घर पर आये।

चंगदेव को साथ बिठाकर चाचग ने भोजन किया।

भोजन करके चाचग ने चंगदेव से पूछा :

'बेटा, तुझे गुरुदेव अच्छे लगते हैं...?'

'हाँ... बहुत अच्छे लगते हैं!'

'तू उनके पास रहेगा?'

'रहूँगा।'

'पर तुझे वहाँ तेरी माँ नहीं मिलेगी!'

'फिर भी मैं गुरुदेव के पास रहूँगा।'

'गुरुदेव के पास रहकर क्या करेगा?'

'गुरुदेव जो कहेंगे वह करूँगा।'

'गुरुदेव पढ़ाई करने को कहेंगे।'

'तो मैं पढ़ाई करूँगा!'

'गुरुदेव के साथ नंगे पाँव चलना होगा।'

'चलूँगा मैं।'

चाचग सेठ सोचते हैं : 'इस बच्चे पर हमें मोह है... इसे हम पर मोह नहीं है...।'

चाचग सेठ ने पाहिनी के साथ चर्चा की। पाहिनी ने भी अपनी सहमति दे दी।

चाचग सेठ ने चंगदेव को गुरुदेव को सौंप दिया।

गुरुदेव देवचन्द्रसूरिजी चंगदेव को लेकर खंभात की ओर विहार कर गये।

धंधुका से खंभात ज्यादा दूर नहीं है।

कुछ ही दिनों में वे खंभात पहुँच गये।

गुरुदेव ने चंगदेव को शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में पढ़ाई करने के लिए बिठाया। स्वयं उसे पढ़ाने लगे। चंगदेव की विनय... उसकी पैनी बुद्धि देखकर गुरुदेव को लगा...।

'यह लड़का अति शीघ्र ही विद्वान हो जाएगा। ढेर सारे शास्त्र यह पढ़ लेगा।'

एक दिन गुरुदेव ने गुजरात के महामंत्री उदयन को अपने पास बुलाया। उदयन मंत्री जैन धर्म को माननेवाले थे। उन्हें जैन धर्म पर गहरी श्रद्धा थी, दृढ़ आस्था थी। उनसे गुरुदेव ने कहा :

'महामंत्री, यह लड़का धंधुका के चाचग सेठ का पुत्र है। इसे दीक्षा लेने की है। इसका भविष्य काफी उज्ज्वल है... यह जिनशासन का महान प्रभावी आचार्य होगा। इसकी दीक्षा का उत्सव तुम्हें करना है।'

'किस्मत खुल गई...गुरुदेव मेरी! अवश्य करुँगा मैं इस बच्चे की दीक्षा का महोत्सव! शानदार महोत्सव करुँगा! कब देना चाहते हैं, आप इसे दीक्षा?'

महामंत्री उदयन ने पूछा।

'महा सुदी चौदस के दिन!'

महामंत्री ने बड़ा भारी उत्सव किया। धूमधाम से चंगदेव को आचार्यदेव ने दीक्षा दी। उसका नया नाम रखा गया सोमचन्द्र मुनि!'

'बोलो, सोमचन्द्र मुनि की जय !'

❖ ❖ ❖

२. सरस्वती की साधना

- ***आ***चार्यदेव देवचन्द्रसूरीश्वरजी स्वयं सोमचन्द्र मुनि को पढ़ाते हैं।

- साधु जीवन के आचार-विचार सिखाते हैं - समझाते हैं।

- बड़े प्रेम से - वात्सल्य पूर्वक सोमचन्द्र मुनि का ध्यान रखते हैं।

सोमचन्द्र मुनि पूरी एकाग्रता से पढ़ाई करते हैं... पढ़ी हुई बातों को याद रखते हैं। गुरुमहाराज की विनय करते हैं।

गुरुमहाराज की सेवा करते हैं।

एकलव्य की भाँति तन्मय होकर विद्याभ्यास करते हैं। पूरी सावधानी के साथ साधु जीवन के आचारों का पालन करते हैं।

एक दिन गुरुदेव ने, सोमचन्द्र मुनि को महान् ज्ञानी पुरुषों की जीवन कथाएँ सुनाई। चौदह पूर्व के ज्ञाता भगवान भद्रबाहुस्वामी, श्री स्थूलभद्रस्वामी वगैरह के अगाध-अपार ज्ञान की बातें कही।

सोमचन्द्र मुनि को ज्ञान और ज्ञानी की बात बड़ी अच्छी लगती थी! गुरुदेव ने उन्हें 'चौदह पूर्व' नामक शास्त्रों के नाम और उन शास्त्रों के विषयों के बारे में समूची जानकारी दी थी।

गुरुदेव से ऐसी बातें सुनते-सुनते सोमचन्द्र मुनि के मन में विचार आते... 'क्या मैं भी वैसा ज्ञानी नहीं हो सकता? मैं इतना ज्ञान प्राप्त कर लूँ तो? ऐसा ज्ञान प्राप्त करने के लिए मुझे कश्मीर जाकर वहाँ पर सरस्वती की मूल पीठ-मूलस्थान में बैठकर साधना करनी चाहिए। मैं गुरुदेव से पूछ लूँ... यदि वे खुशी-खुशी इज़ाज़त दे दें, तो मैं कश्मीर जाकर सरस्वतीदेवी की उपासना करूँ!'

कुछ दिनों तक सोमचन्द्र मुनि का मनोमंथन चलता रहा। प्राणों से भी अधिक प्रिय गुरुदेव को छोड़कर कश्मीर जैसे दूर के प्रदेश में जाने के लिए उनका मन मना कर रहा था... और इधर ज्ञानप्राप्ति एवं अभिनव प्रज्ञा प्राप्त करने के लिए देवी सरस्वती की आराधना-उपासना करने की तीव्र इच्छा उन्हें कश्मीर जाने के लिए प्रेरित कर रही थी।

एक दिन सोमचन्द्र मुनि विचारों की नदी में गोते लगा रहे थे, गुरुदेव

देवचन्द्रसूरिजी ने उन्हें देखा। गुरुदेव को भी कुछ दिनों से महसूस हो रहा था... जैसे सोमचन्द्रमुनि किसी गंभीर सोच में डूबे हुए हैं।' उन्होंने सोमचन्द्रमुनि के सिर पर अपना वात्सल्य पूर्ण हाथ रखते हुए पूछा :

'वत्स... क्या बात है? ऐसे कौन से विचार में खो गये हो?' यकायक गुरुदेव को अपने समीप में आया देखकर सोमचन्द्रमुनि सहसा चौंक उठे। खड़े होकर गुरुचरणों में वंदना की और कहा :

'गुरुदेव, कुछ दिनों से एक विचार मन में निरंतर उठ रहा है।'

'क्यों इतनी परेशानी विचार करने में? तूने कभी कोई विचार मुझ से छुपाया नहीं है...।'

'आप से निवेदन करना ही है... पर उस विचार के लिए मैं स्वयं अभी द्विधा में हूँ। गुरुदेव! पर आज तो आप के चरणों में सब कुछ कह देना ही है। आप आसन पर बिराजिए।'

आचार्यदेव आसन पर बैठे।

सोमचन्द्रमुनि विनयपूर्वक उनके सामने बैठे।

'गुरुदेव, जब से आपने मुझे चौदह पूर्वों के ज्ञान की बात कही है... पूर्वधर महर्षियों की कथाएँ सुनाई हैं... तब से मेरे मन में उन चौदह पूर्वों का ज्ञान प्राप्त करने की अदम्य इच्छा-अभीप्सा जगी है। परन्तु वैसा ज्ञान, विशिष्ट प्रज्ञा और तीक्ष्ण बुद्धि-शक्ति के बिना प्राप्त होना शक्य नहीं है! वैसी बुद्धि नहीं हो तो आपसे वह सारा ज्ञान...वैसा अद्‌भुत ज्ञान मैं प्राप्त नहीं कर सकता।

'गुरुदेव, मैंने पढ़ा है... सुना है... वैसी विशिष्ट प्रज्ञा देवी सरस्वती की उपासना करके प्राप्त होती है। वह उपासना, साधना देवी सरस्वती की मूल शक्तिपीठ जहाँ पर है... वहाँ जाकर करने से शीघ्र ही सिद्ध होती है। इसके लिए कश्मीर जाकर सरस्वती उपासना करने की मेरी इच्छा है।

परन्तु गुरुदेव, आपको छोड़कर इतने दूर के प्रदेश में जाने के लिए मन कबूल नहीं करता है...।

सोमचन्द्र मुनि की आँखें गीली हो उठीं। उनका गला अवरुद्ध हो गया।

गुरुदेव ने कहा : 'वत्स, देवी सरस्वती की उपासना करने से विशिष्ट बुद्धि प्रगट होती है और इस बुद्धि के सहारे विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है... नये-नये धर्मग्रन्थ और अध्यात्म ग्रन्थ का सर्जन किया जा सकता है। तुझे

वह करना है। इसलिए तू कश्मीर जा। मेरा तुझे हार्दिक आशीर्वाद है। और फिर मैं तो तेरे साथ ही हूँ ना! हमेशा तेरे दिल में बसा हुआ जो हूँ!

सभी विकल्पों का त्याग करके कश्मीर जाने की तैयारी करो। देवी सरस्वती की दिव्य कृपा प्राप्त करके, वापस जल्दी लौटकर मुझसे मिलना।'

शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में सोमचन्द्रमुनि ने अन्य एक सहायक मुनि के साथ कश्मीर की ओर प्रयाण किया।

वे खंभातनगर के बाहर पहुँचे।

वहाँ उन्होंने एक भव्य जिनालय देखा।

वे उस जिनालय में दर्शन के लिए पहुँचे।

'उज्जयन्तावतार' नाम का वह जिनालय था। उसमें भगवान नेमनाथ की नयनरम्य मूर्ति थी।

भगवान के दर्शन करके सोमचन्द्र मुनि का चित्त प्रसन्न हो उठा। जिनालय का शान्त वातावरण उनको बड़ा अच्छा लगा। उनके मन में विचार कौंधा :

'मैं आज की रात इस जिनालय में बिताऊँ तो, यहीं से देवी सरस्वती का ध्यान प्रारम्भ कर दूँ।'

सोमचन्द्र मुनि ने अपने साथी मुनिराज से अपने मन की बात कही। मुनिराज ने सहमति दी। जिनालय के पास एक छोटी सी धर्मशाला थी। उसमें दिन गुजार दिया। रात्रि के समय शुद्ध वस्त्र पहनकर सोमचन्द्र मुनि जिनालय में गये। भगवान नेमनाथ की सुन्दर-सुहावनी प्रतिमा के समीप घी का अखण्ड दीपक जल रहा था। दिये की झिलमिलाती रोशनी में प्रतिमा जैसे हास्य बिखेर रही थी।

सोमचन्द्र मुनि भगवंत के सामने शुद्ध भूमि पर आसन बिछाकर, पद्मासन लगाकर बैठ गये। उन्होंने मंत्रस्नान किया। और देवी सरस्वती के ध्यान में लीन हो गये।

रात के छह घंटे बीत गये। मुनिराज स्थिर मन-नयन से जाप-ध्यान कर रहे थे... और देवी सरस्वती साक्षात् प्रगट हुई।

देवी ने मुनि पर स्नेह की सरिता बहाई...कृपा की बारिश की... देवी ने मधुर स्वर में कहा :

'वत्स, तुझे अब मुझे खुश करने के लिए कश्मीर तक जाने की जरुरत

नहीं है। तेरी भक्ति और ध्यान से मैं देवी सरस्वती तेरे ऊपर प्रसन्न हुई हूँ! मेरे प्रसाद से तू 'सिद्ध-सारस्वत' होगा।'

इतना कहकर देवी सरस्वती तत्काल अदृश्य हो गई। जिनालय में खुशबू का कारवाँ उतर आया।

सोमचन्द्र मुनि के चेहरे पर तेज झिलमिलाने लगा। उनकी प्रज्ञा तत्काल शतदल कमल की भाँति विकसित हो उठी।

उनके श्रीमुख से सरस्वती की स्तुति का प्रवाह बरसाती नदी की भाँति अनवरत-अथक बहने लगा। उनका हर्ष उछल रहा था... उनका रोंया-रोंया उल्लास से पुलक रहा था। कब सबेरा हो गया... उन्हें मालूम ही नहीं रहा।

उन्होंने भगवान नेमनाथ की स्तवना की।

वे धर्मशाला में लौटे। साथी मुनिवर से कहा :

'मुनिवर, हमें वापस गुरुदेव के पास जाना है। जिस कार्य के लिए कश्मीर जाने का था... वह कार्य यहीं पर पिछली रात में सिद्ध हो गया है!'

दोनों मुनिराज पूज्य गुरुदेव के पास पहुँच गये। गुरुदेव ने सोमचन्द्र मुनि के चेहरे पर अपूर्व परिवर्तन देखा। दिव्य तेज देखा। गुरुदेव प्रसन्न हो उठे। सोमचन्द्र मुनि ने गुरुदेव के चरणों में वंदना करके रात की सारी घटना विदित की।

गुरुदेव ने सोमचन्द्र मुनि को वात्सल्य से अभिषिक्त किया... जी भरकर उनकी प्रशंसा की। गुणवान शिष्य की प्रशंसा तो गुरुजन भी करते हैं।

गुरुदेव ने कहा : 'वत्स, श्रुतदेवी सरस्वती की अद्‌भुत कृपा तुझे प्राप्त हुई है...! तेरा महान् सद्‌भाग्य उदित हुआ है। अब तू दुनिया के किसी भी विषय पर लिख सकेगा... बोल सकेगा... औरों को अच्छी तरह समझा सकेगा। तेरी वाणी प्रभावशाली बनेगी। राजा-महाराजा को प्रतिबोधित करके उन्हें मोक्षमार्ग का आराधक बना सकेगा।

'गुरुदेव, आप की ही कृपा से मुझे यह सिद्धि प्राप्त हुई है।' सोमचन्द्र मुनि ने विनम्र शब्दों में कहा।

'सोमचन्द्र, एक ही रात की आराधना-उपासना से श्रुतदेवी सरस्वती प्रसन्न हो जाए... ऐसा मेरे ध्यान में आज तक एक भी प्रसंग नहीं है... तेरा यह प्रकर्ष पुण्य है कि तुझे अल्प प्रयास में ऐसी शक्ति-सिद्धि प्राप्त हो गई है!'

'गुरुदेव, जब मैंने श्रुतदेवी को रुबरु देखा...

ओह...कैसी उनकी शोभा थी! सिर पर रत्नजड़ित मुकुट था। उज्जवल कांतिमय देहप्रभा थी। उनके बायें हाथ में पुस्तक थी। दाहिने हाथ में अक्षमाला थी। एक हाथ में वीणा धारण किये हुए थी। और एक हाथ मुझ पर आशीर्वाद बरसा रहा था। उन माँ की कमल जैसी आँखों में स्नेह का-कृपा का सागर उमड़ रहा था... और उनकी वाणी की मधुरता तो अद्‌भुत थी...गुरुदेव, उसका तो मैं बिल्कुल बयान ही नहीं कर सकता!'

'वत्स... तेरा यह परम सौभाग्य है कि तू देवी के प्रत्यक्ष दर्शन पा सका।'

सोमचन्द्रमुनि ने देवी सरस्वती की कृपा से अनेक धर्मग्रन्थों का सर्जन करना चालू किया। एक पल भी वे आलस या सुस्ती नहीं रखते हैं...फिजूल और व्यर्थ की बातों में वे तनिक भी समय बरबाद नहीं करते हैं...

दिन-रात एक ही कार्य!

साहित्य का सर्जन!

ग्रन्थों का निर्माण!

❖ ❖ ❖

३. कोयला बने सोनामुहर

आचार्यदेव श्री देवचंद्रसूरिजी शिष्य परिवार के साथ विचरण करते हुए नागपुर पधारे।

नागपुर के जैन संघ ने उनका आदर पूर्वक स्वागत किया। आचार्यदेव ने धर्म का उपदेश देकर सभी के मन को आनन्दित कर दिया।

प्रतिदिन आचार्यदेव धर्म का उपदेश देते हैं। नागपुर का जैन संघ हर्षान्वित होकर अपने आपको धन्य मान रहा है। इधर सोमचंद्र मुनि की विद्वत्ता की सुवास भी चौतरफ फैलने लगी है।

इसी नागपुर में धनदसेठ नाम के एक बहुत बड़े धनवान सेठ रहते थे। यशोदा नाम की गुणवती एवं शीलवती पत्नी थी। चार संस्कारी बेटे थे, धनद सेठ के। चारों बेटों की शादियाँ हो चुकी थी, उनके घर भी पुत्रों का जन्म हुआ था... यों धनद सेठ का परिवार बढ़ता जा रहा था।

धनदसेठ के घर पर आया हुआ कोई अतिथि कभी खाली हाथ नहीं लौटता था। वे साधु-संतों की भी उचित सेवा करते थे। भक्ति करते थे। अनाथ-गरीबों को दयाभाव से भरपूर दान देते थे। इस तरह अपने पैसे का वे सदुपयोग करते थे। वे समझते थे कि लक्ष्मी चंचल है... धन-वैभव जाड़े की ढलती धूप से हैं... अभी हों अभी चले जाएँ!

- उनका व्यापार लाखों रुपयों का था।
- लाखों रुपये उन्होंने लोगों को दिये हुए थे।
- लाखों रुपयों के हीरे-जवाहरात उन्होंने जमीन में गाड़ रखे थे।
- लाखों रुपयों का सोना एवं चाँदी भी जमीन में गाड़ रखा था। वे समझते थे... 'जब संकट का समय आयेगा... तब यह सब काम लगेगा।'

कुछ बरस आनन्द पूर्वक गुजरे... और धनद सेठ को व्यापार में बड़ा भारी नुकसान हुआ। लोगों को दिये हुए रुपये वापस नहीं आये... समुद्र में घूमते हुए जहाज खो गये...

यशोदा सेठानी ने अपने सारे गहने सेठ को दे दिये।

चार पुत्रवधुओं ने भी अपने-अपने अलंकार ससुरजी को सुपुर्द कर दिये और विनम्र शब्दों में निवेदन किया :

'पितातुल्य ससुरजी, इन गहनों को बेचकर भी आप अपना व्यापार चालू रखें।'

धनद सेठ ने कहा : 'तुम्हारी इतनी उदारता से मेरा दिल विभोर हुआ जा रहा है। पर मुझे तुम सबके गहनों की आवश्यकता नहीं है... न ही तुम्हारी सास के गहनों की जरुरत है। अभी तो हमारे पास जमीन के भीतर गाड़ा हुआ ढेर सारा धन है। आपत्ति के वक्त काम में आये... इसलिए अलग अलग जगह पर मैंने धन गाड़ कर रखा है!'

सेठ की बात सुनकर सेठानी और पुत्रवधुएँ आनन्दित हो उठीं।

सेठ ने अपने चारों पुत्रों को बुलाकर कहा :

'मैं तुम्हें जिस जगह का निर्देश दूँ... उस जगह पर खुदाई करनी है... और वहाँ से धन संपत्ति के घड़े बाहर निकालने हैं।'

सेठ ने पुत्रों को जगह का निर्देश दिया। निशानी बतलाई। पुत्रों ने एक के बाद एक जगह खोद-खोद कर घड़े बाहर निकाले। प्रत्येक घड़े पर श्रीफल रखकर मिट्टी से लेप करके घड़ों के मुँह बंद किये हुए थे।

सेठ ने मिट्टी का लेप दूर किया। श्रीफल दूर करके घड़े में हाथ डाला तो उनके हाथ में सोने की जगह कोयले के टुकड़े आये! दूसरा घड़ा खोला... उसमें से भी कोयले निकले...तीसरा...चौथा... पाँचवा यों दस घड़े खोल दिये। सभी में से कोयले ही कोयले निकले।

सेठ तो सिर पीटने लगे।

बेहोश होकर जमीन पर ढेर हो गये!

सेठानी...पुत्र...पुत्रवधुएँ सभी रोने लगे।

सेठ होश में आये। पर वे धैर्य गवाँ बैठे और फफक-फफक कर रो दिये। उन्होंने परिवार से कहा :

हमारे दुर्भाग्य ने तो हद कर दी। जमीन में गाड़े हुए धन को भी कोयला बनाकर रख दिया। मेरी धारणा झूठी सिद्ध हुई। मैंने सोचा था... शायद बाहर का धन चला जाएगा तब यह जमीन में सुरक्षित रखा हुआ धन तो काम में आएगा।

जब दुर्भाग्य आता है तब पूरी सेना के साथ आता है... चारों ओर से एक साथ धावा बोलता है... आदमी की अक्ल सुन्न हो जाती है... शास्त्रज्ञान व्यर्थ

हो जाता है... गर्व चूर-चूर हो जाता है... महानता दूर चली जाती है... और उसके सभी मनोरथों के महल टूट-टूट कर ढेर हो जाते हैं!

दुर्भाग्य राजा को रंक बना देता है...

बद-किस्मती अमीर को गरीब बना देती है... और मेरु को तिनके के बराबर बना कर रख देती है।'

धीरे-धीरे सेठ और सेठ का परिवार शान्त होता है... घर की औरतों के गहने बेच-बेच कर अपने विशाल परिवार का भार निभाते हैं।

पर इतना धन भी आखिर कब तक चलने का? सेठ ने अपनी दुकानें बेच दीं... रहने की हवेली के अलावा सभी घर बेच डाले... फिर भी दुर्भाग्य उनका पीछा नहीं छोड़ता था! सेठ के हालात ऐसे हो गये कि घर के बरतन भी बेच डालने पड़े!

और एक दिन ऐसा आया कि सेठ के परिवार को दो समय का खाना भी नसीब नहीं होता है... अत्यन्त निर्धनता ने सेठ का घर दबोच लिया।

उसी अरसे में आचार्यदेव श्री देवचंद्रसूरिजी नागपुर में पधारे थे।

एक दिन सोमचंद्र मुनि गोचरी के लिए निकले थे। उनके साथ वीरचन्द्र नाम के मुनिराज भी थे।

दोनों मुनिराज ने धनद सेठ की हवेली में गोचरी के लिए प्रवेश किया। हवेली की देहरी के बाहर ही सेठ और उनका दीन-हीन, श्री विहीन परिवार बैठा हुआ था। आटे और पानी में नमक डालकर बनाई हुई राब पी रहा था।

वीरचन्द्र मुनि के पीछे सोमचंद्र मुनि खड़े थे। उन्होंने सेठ की हवेली के भीतर चौतरफ निगाह फेंकी। सेठ जो राब पी रहे थे वह भी देखा। सोमचंद्र मुनि को आश्चर्य हुआ। उन्होंने मंद स्वर में वीरचन्द्रमुनि से कहा :

'पूज्यवर, यह सेठ इतने धनवान होने पर भी निर्धन मनुष्य की भाँति राब क्यों पी रहे हैं? यह तो किसी राजा की तरह बत्तीस साग और तेतीस पकवान खा सके वैसी श्रीमंताई का मालिक है!'

वीरचन्द्र मुनिवर ने कहा :

'छोटे महाराज... तुम्हारे तो बड़े-बड़े श्रीमंत लोग भक्त हैं... तुम रोजाना उनके घर से मिठाई लाते हो... फिर तुम्हें गरीब आदमी के हालात का पता क्या लगेगा? कभी यदि निर्धन श्रावक के घर पर जाकर गोचरी लाओगे तो

मालूम पड़ेगा कि गरीबी क्या चीज है... और गरीब लोग क्या खाते हैं? क्या पीते हैं?'

सोमचंद्र मुनि ने विस्मित स्वर में कहा :

'आप इस सेठ को निर्धन कहते हो? घर के उस कोने में तो सोने-चांदी और सोनामुहरों का ढेर पड़ा हुआ मुझे दिखाई देता है! लगता है यह सेठ कंजूस है!'

अब विस्मित होने की बारी वीरचन्द्र मुनि की थी : 'कहाँ है सोनामुहरों का ढेर?'

सोमचंद्र मुनि ने इशारे से ढेर बताया। वीरचन्द्र मुनि ने तेज से चमकते हुए उस ढेर को देखा। वे भी आश्चर्य से स्तब्ध हो उठे।

धनद सेठ उन दो मुनिराजों के पास ही खड़े थे। उन्होंने हाथ जोड़ कर वीरचन्द्र मुनि से पूछा :

'गुरुदेव, ये छोटे मुनिराज क्या कहते हैं?'

वीरचन्द्र मुनि ने बात को टालने की कोशिश करते हुए कहा... ये तो ऐसे ही...स्वाभाविक बातें कर रहे थे।'

परन्तु धनद सेठ यों बात को जाने दे वैसे थे नहीं। उनके कानों पर 'सोनामुहर' शब्द टकराया था। उन्होंने आग्रह-अनुनय किया मुनिराज से :

'गुरुदेव, आप दया कीजिए... बात को टालिए मत! मेरे कानों ने कुछ शब्द सुन लिये हैं... आप यदि पूरी बात बताएंगे तो आपकी महती कृपा होगी। बड़ा उपकार होगा मुझ अभागे पर आपका!' वैसे भी पूरा परिवार दुर्भाग्य का शिकार होकर दिन काट रहा है...' धनद की आँखें छलछला उठीं।

वीरचन्द्र मुनि ने कहा : 'ये बाल मुनि तो तुम्हारी हवेली के उस कोने में पड़े हुए सोनामुहरों के ढेर को देख रहे थे और मुझ से कह रहे थे... ये सेठ इतने श्रीमंत होने पर भी इस तरह गरीब की भाँति नमक - आटे की राब क्यों पी रहे है?'

धनद सेठ चौंक पड़े। उनकी आँखें चौड़ी हो गईं। उन्होंने दोनों हाथों से वीरचंद्र मुनि को पकड़ कर झिंझोड़ सा दिया। याचनापूर्ण स्वर में वे बोले :

'प्रभु, कहाँ है वह सोनामुहरों का ढेर? कहाँ देखा है आप ने? भगवंत...क्या सच ही वे सोनामुहरें हैं?

वे थीं तो सोनामुहरें ही पर मेरे कातिल दुर्भाग्य से वे सब कोयले का ढेर बनकर रह गई थीं... मैंने वह कोयले का ढेर घर के एक कोने में डाल रखा था!'

'सेठ तुम्हारे उस ढेर पर हमारे छोटे मुनिराज की दृष्टि पड़ी और कोयले फिर से सोनामुहरें हो गईं!'

धनद सेठ ने सोमचंद्र मुनि के चरणों में भावविभोर होकर प्रणाम करते हुए कहा :

'भगवान्, आपके उत्कृष्ट पुण्य के प्रभाव से कोयला बना हुआ मेरा सोना वापस सोना हो गया। आपने मुझे निर्धनता की खाई में से बाहर निकाला। अब आप मुझ पर एक कृपा और कीजिए...उन सोनामुहरों के ढेर पर आप हाथ रखकर यहाँ से पधारें... ताकि आपके जाने के बाद वापस ये सोनामुहरें कोयले में परिवर्तित न हो जाएँ!'

धनद सेठ की विनति से सोमचन्द्र मुनि ने सोनामुहरों के ढेर पर हाथ रखा। धनद सेठ ने तत्काल उन सोनामुहरों को उठाकर तिजोरी में रख दी!

धनद सेठ बार-बार सोमचन्द्र मुनि का उपकार मानने लगा।

मुनिवरों ने भिक्षा ग्रहण की और उपाश्रय की ओर चल दिये।

धनद सेठ भी मुनिवरों के पीछे-पीछे उपाश्रय की ओर चले। धनद सेठ के मन में एक शुभ विचार अंकुरित होकर पनपने लगा था। उस शुभ विचार को साकार बनाने के लिए ही वे गुरुदेव के पास उपाश्रय में जा रहे थे।

उपाश्रय में पहुँच कर धनद सेठ ने आचार्यदेव के चरणों में वंदना की। उन्होंने गद्गद् स्वर में कहा :

'आचार्य भगवंत! आपके लाड़ले शिष्य सोमचन्द्र मुनि के पुण्य प्रभाव से कोयला हो चुकी मेरी सोनामुहरें पुनः सुवर्ण हो गयी... आपके शिष्य की अमृतमयी दृष्टि का यह प्रभाव है! इसलिए वह सारा सोना आपका है... आप कृपा कीजिए मुझ पर और आज्ञा दीजिए कि उस सुवर्ण का मैं कहाँ पर उपयोग करूँ?'

धनद सेठ की कितनी महानता!

धनद सेठ की कितनी नीतिमत्ता!

जिनके प्रभाव से धन मिला... उनके श्रीचरणों में अर्पित कर दिया! न तो

अपनी निर्धन स्थिति का विचार किया... न ही अपने सुख वैभव के बारे में सोचा!

आचार्यदेव ने कहा : 'ठीक है... तुम्हारी यही इच्छा है तो तुम श्रमण भगवान महावीर स्वामी का देवविमान सा भव्य मंदिर बनवाओ!'

धनद सेठ ने आचार्य भगवंत की आज्ञा शिरोधार्य की। तुरन्त ही मंदिर के निर्माण की तैयारियाँ प्रारम्भ कीं। उन्होंने आचार्यदेव से विनती की... 'गुरुदेव, इस नवनिर्मित होने वाले जिनप्रासाद में भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा आपश्री के करकमलों द्वारा होनी चाहिए... तब तक आप शिष्य परिवार के साथ यहीं पर बिराजमान रहिए।'

एक ओर मंदिर का निर्माण होने लगा... दूसरी ओर धनद सेठ का खोया हुआ... रुका हुआ व्यापार चलने लगा... वेग से बढ़ने लगा!

जब मंदिर बनकर तैयार हो गया। तब तक तो धनद सेठ ने व्यापार में लाखों रुपये कमा लिए थे। उन्होंने प्रतिष्ठा का भव्य उत्सव रचाया। आचार्य भगवंत ने श्रेष्ठ मुहूर्त में भगवान महावीर स्वामी की भव्य प्रतिमा की प्रतिष्ठा की। जयनादों से धरती-गगन गूँज उठे। नागपुर की अवनी पावनी होकर नाच उठी।

प्रतिष्ठा उत्सव संपन्न होने के पश्चात् आचार्यदेव ने नागपुर से विहार किया। विहार यात्रा करते हुए वे शिष्य परिवार के साथ पाटन पधारे! वही पाटन जो कि गुजरात की राजधानी के रुप में उन्नति के शिखर पर आसीन था। गुर्जरेश्वर सम्राट सिद्धराज के शासन में गुजरात समृद्ध था!

❖ ❖ ❖

४. देवी प्रसन्न होती है!

पाटन में उन दिनों आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी नाम के विद्वान आचार्यदेव बिराजमान थे। वे भी आचार्य श्री देवचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के शिष्यरत्न थे।

देवेन्द्रसूरिजी और सोमचन्द्र मुनि दोनों आत्मीय-मित्र थे। दोनों जब मिलते तब ज्ञानचर्चा तो करते हीं... साथ ही साथ...संघ-शासन एवं विभिन्न समस्याओं के बारे में भी चर्चा करते...। विचारों का विनिमय करते। एक-दूजे के मन की बातें भी करते। ज्ञानगोष्ठि दोनों का मनपसन्द विषय था और दोनों विद्वान थे। महान् थे।

- देवेन्द्रसूरिजी को अपने पद का अभिमान नहीं था !

- सोमचन्द्र मुनि को अपने ज्ञान का गर्व नहीं था !

अभिमान हो...गर्व हो तो मैत्री टिक नहीं सकती ! अभिमान न हो... गर्व का गरूर न हो... तो ही प्रेम बना रह सकता है !

❍ ❍ ❍

एक दिन की बात है।

आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी और सोमचन्द्र मुनि, उपाश्रय में बैठे हुए थे। ज्ञानचर्या का दौर चल रहा था। इतने में वहाँ पर एक आदमी आया। उसने दोनों महापुरुषों की वंदना की। विनयपूर्वक उनके सामने बैठकर अपना परिचय देते हुए उसने कहा :

'मैं वैसे रहनेवाला तो पाटन का ही हूँ। पर मुझे परिभ्रमण का शौक है ! भारत के कई प्रदेशों में मैं घूमा हूँ। घुमक्कड़ी मेरा स्वभाव है। जहाँ कुछ नया दिखता है... नया सुनता हूँ... चला जाता हूँ...। पाटन अभी वापस लौटा तो मैंने आप दोनों के ज्ञान की... आप दोनों के गुणों की काफी प्रशंसा सुनी। इसलिए आपके दर्शन करने हेतु और आप से कुछ निवेदन करने हेतु चला आया।'

'कहिए, क्या कहना चाहते हो ? जो भी कहना हो बिना संकोच से कहिए।' आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी ने कहा।

'महाराज, आप दोनों गौड़ देश में जाइये। गौड़ देश में आजकल तरह-तरह के मांत्रिक हैं, मंत्रविद् हैं, तांत्रिक हैं, तंत्रविद् हैं! अनेक दिव्य शक्ति के धनी महापुरुष हैं। वहाँ आप पधारिये।

आप तो महात्मा हैं, आपकी शक्ति तो प्रजा के कल्याण के लिए ही होगी!'

'तुम्हारी बात योग्य है, विचारणीय है। हम इस बारे में उचित विचार-विनिमय करके योग्य निर्णय लेंगे।'

वह आदमी प्रणाम करके चला गया। देवेन्द्रसूरिजी ने सोमचंद्र मुनि के सामने देखा। सोमचन्द्र मुनि ने कहा :

'इस महानुभाव की बात मुझे तो बहुत ही पसन्द आई। यदि गुरुदेव इज़ाज़त दें... तो हम दोनों चलें गौड़ देश की यात्रा के लिए!'

'मेरे मन में जाने की इच्छा हो रही है। जाने से कुछ न कुछ तो प्राप्त होगा ही! चलें, गुरुदेव के चरणों में निवेदन करें!'

दोनों महात्मा गुरुदेव के पास गये। सारी बात कही। साथ ही विनम्र शब्दों में गौड़ देश में जाने के लिए अनुमति माँगी।

गुरुदेव ने अनुमति भी दी और आशीर्वाद भी!

❍ ❍ ❍

देवेन्द्रसूरिजी और सोमचन्द्र मुनि ने पाटन से प्रस्थान किया। सभी शकुन श्रेष्ठ हो रहे थे। सोमचन्द्र मुनि ने कहा :

'सूरिदेव, शकुन तो खूब अच्छे हो रहे हैं। अवश्य हमारी कार्यसिद्धि होगी!'

'सही बात है तुम्हारी... महान् कार्य की सिद्धि होनी चाहिए।'

वे विहार करते हुए, एक दिन शाम के समय 'खेरालु' नामक गाँव (वर्तमान में तारंगा के निकट) में पहुँचे। रात बिताने के लिए उपाश्रय में जाकर रुके।

शाम का प्रतिक्रमण करने की तैयारी कर रहे थे। इतने में उपाश्रय के द्वार पर एक वृद्ध साधु आ पहुँचे।

- पूरे छह फीट की ऊँचाई!

- भव्य शरीर... पर बुढापे का असर दिखायी दे रहा था।

- आँखों में अपूर्व तेज और सुन्दर-मोहक चेहरा।

आते ही उन्होंने पूछा :

'महात्मा, क्या मैं यहाँ रातभर रुक सकता हूँ!'

'पधारिये... महात्मन्! आप हमारे साथ यहाँ पर रात बिता सकेंगे! आपके साथ रहने से हमें आनन्द होगा।'

सोमचन्द्र मुनि ने देवेन्द्रसूरिजी के कानों में कहा :

'मुझे तो लगता है ये कोई विद्यासिद्ध महापुरुष हैं। हम उन्हें वंदना कर के सुख-शाता-पृच्छा करें।'

दोनों महात्मा उन वृद्ध साधुपुरुष के पास गये। उनके चरणों में भावपूर्वक वंदना की। कुशलता पूछी।

वृद्ध महात्मा ने पूछा : 'आप दोनों कहाँ जाने के लिए निकले हो?'

देवेन्द्रसूरिजी ने कहा : 'हम गौड़ देश में जाने के लिए चले हैं।'

'प्रयोजन?' वृद्ध साधु ने कहा।

'विद्याप्राप्ति।' देवेन्द्रसूरिजी ने प्रत्युत्तर दिया।

वृद्ध साधु ने कहा : 'विद्याप्राप्ति के लिए इतने दूर के देश में जाने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हें सारी विद्याएँ दूँगा। मेरे पास सारी विद्याएँ हैं। परन्तु तुम्हें मुझे गिरनार पर्वत पर पहुँचाना होगा। मैं बूढ़ा हूँ। चल नहीं सकता। वहाँ पहुँच कर मैं तुम्हें मनचाही विद्याएँ दूँगा! तुम जैसे सुयोग्य साधकों को मेरी विद्याएँ देकर मेरा मन भी संतुष्ट होगा। इतना ही नहीं परन्तु तुम्हारे ही हाथों मेरी अन्तिम क्रिया होगी!'

'नहीं, नहीं महापुरुष! ऐसा अशुभ कथन मत करो। आपका जीवन दीर्घायु हो। आपकी विद्या शक्तियों से दुनिया का भला हो!'

आयुष्य जितना होगा उतना ही तो जिया जाएगा। महानुभाव! अब तुम गाँव में जाओ, और जाकर डोली की सुविधा कर आओ। सबेरे हमें यहाँ से प्रयाण करना है।

देवेन्द्रसूरिजी और सोमचन्द्रमुनि गाँव के मुखिया के पास गये। मुखिया से मिलकर डोली और डोली उठानेवाले आदमियों की व्यवस्था कर के वापस उपाश्रय में लौटे।

दोनों के दिल में खुशी का दरिया उछल रहा था।

देवेन्द्रसूरिजी ने कहा :

'सोमचन्द्र मुनि, तुम सचमुच सौभाग्यशाली हो! सरस्वती की उपासना करने के लिए तुम्हें कश्मीर तक जाना नहीं पड़ा, वैसे ही विद्याशक्तियाँ प्राप्त करने के लिए तुम्हें गौड़ देश तक लम्बा नहीं जाना पड़ेगा! तुम्हारा पुण्य बल खुद ही ऐसे विद्यासिद्ध महापुरुष को तुम्हारे समीप खींच लाया। तुम्हारे साथ आने से मुझे भी विद्यालाभ होगा!'

सोमचन्द्र मुनि ने कहा : 'पूज्यवर, यह सब गुरुदेव की परम कृपा का ही परिणाम है। परमात्मा का अचिन्त्य अनुग्रह है!'

देवेन्द्रसूरिजी ने कहा : 'तुम्हारी बात सही है... पर गुरुकृपा और परमात्मा का अनुग्रह सभी जीवों को तो नहीं मिल पाता है ना? पुण्यशाली और भाग्यशाली जीव को ही प्राप्त होता है।'

मधुर बातों में खोये हुए दोनों मित्र कब नींद की गोद में सरक गये... इसका पता ही नहीं रहा! विहार की थकान तो थी ही। इस पर लम्बी विहारयात्रा का अन्त हो जाने की निश्चिन्तता भी मिल गयी थी।

ब्रह्म मुहूर्त में जब दोनों मित्र जगे.... श्री नमस्कार महामंत्र का स्मरण कर के आँखें खोलीं...तो

- खेरालु गाँव नहीं था!
- चार दीवारों का मकान नहीं था!
- चौतरफ पहाड़ थे!
- बड़े-बड़े पेड़ खड़े थे।
- बादलों से रहित आकाश बहुत नजदीक लग रहा था!

सोमचन्द्रमुनि ने पूछा :

'आचार्यदेव, ये हम कहाँ आ गये? और वे वृद्ध विद्यासिद्ध महापुरुष, कहाँ चले गये?'

आचार्यश्री देवेन्द्रसूरिजी चारों ओर देख रहे थे। उन्होंने कहा : 'लगता है हम गिरनार पर्वत पर आ गये हैं...! कोई विद्याशक्ति हमें यहाँ उठा लाई है...! यह निःशंक बात है!'

दोनों मित्र खड़े हुए। इर्दगिर्द चक्कर लगाकर वापस उसी घटादार पेड़ के नीचे आकार खड़े हुए।

अभी सूर्योदय हुआ नहीं था। परन्तु यकायक उन्होंने अपने पास एक तेज का वर्तुल निर्मित होते देखा। तीव्र प्रकाश फैल रहा था।

दोनों मित्रों के लिए यह बड़ी ताज्जुबी की बात थी!

तेजस्वी दिव्यप्रभा से पूरित एक देवी प्रगट हुई। वह दोनों महात्माओं के समीप आई। उसके चेहरे पर हल्की सी मुस्कान थी। आँखों से वात्सल्य की बारिश हो रही थी। वह बोली :

'मैं शासनदेवी हूँ। तुम्हारे उत्कृष्ट भाग्य के कारण खिंची-खिंची यहाँ पर आई हूँ।'

'पर हमें खेरालु से यहाँ पर कौन ले आया?' सोमचन्द्रमुनि अपनी जिज्ञासा को दबा नहीं सके।

'मैं ही ले आई हूँ तुम्हें यहाँ पर!'

और वे जो हमारे साथ खेरालु के उपाश्रय में रात बिताने को रुके हुए थे... वे महापुरुष कहाँ चले गये?

'वह वृद्ध तपस्वी का रूप मेरी ही माया थी। तुम्हारे मन में विद्याओं की तीव्र अभीप्सा देखकर मैं स्वयं ही तुम्हें उस रूप में मिली थी। मैं ही तुम्हें यहाँ गिरनार महातीर्थ के ऊँचे शिखर पर ले आई हूँ। इस तीर्थ के अधिपति हैं, भगवान नेमनाथ!

महात्मा, यह पहाड़ अद्‌भुत है। यहाँ पर अनेक दिव्य औषधियों के खजाने हैं। यहाँ पर की हुई मंत्र साधना तुरन्त सिद्ध होती है...। मैं तुम्हें कुछ दिव्य औषधियाँ बताऊँगी... और सुनने मात्र से ही सिद्ध हो जाएँ, वैसे दो मंत्र दूँगी!

- एक मंत्र से देवों का आह्वान् किया जा सकता है।

- दूसरे मंत्र से राजा-महाराजा वश में हो सकते हैं।

तुम्हें ये दो मंत्र देती हूँ। तुम सावधान होकर...एकाग्र मन से उन मंत्रों को सुनना।'

दोनों महात्माओं को शासनदेवी ने दो मंत्र सुनाए। सुनाकर कहा।

'चलो, मैं तुम्हें कुछ दिव्य औषधियों का निर्देश करती हूँ। तुम उन्हें इकट्‌ठी कर लेना। वे औषधियाँ अमुक-अमुक रोगों पर तत्काल असर करनेवाली हैं।'

शासनदेवी औषधियाँ बताने लगी...उनके प्रयोग-उपयोग समझाने लगी। यों करते-करते.... कई तरह की औषधियाँ उन दोनों महात्माओं ने एकत्र कर लीं।

अभी सूर्योदय हुआ नहीं था।

शासनदेवी ने उन दोनों महात्माओं से कहा :

'मैंने तुम्हें जो दो मंत्र सुनाये थे.... वे मंत्र कहीं तुम भूल न जाओ.... इसके लिए यह अमृत तुम पी लो।'

देवी ने अमृत से भरा हुआ कमण्डल उनके सामने रख दिया।

देवेन्द्रसूरिजी ने कहा :

'नहीं, अभी तो रात्रि शेष है, मैं नहीं पी सकता !'

देवी ने सोमचन्द्रमुनि के सामने कमण्डल रखा।

सोमचन्द्र मुनि समयज्ञ थे। उनके पास नियम और उसके अपवाद दोनों का सही ज्ञान था। वे तुरन्त सारा का सारा अमृत गटगटा गये।

देवों को आकर्षित करने का मंत्र और राजा-महाराजाओं को प्रभावित करने का मंत्र सोमचन्द्र मुनि की स्मृति में सुदृढ़ हो गये। देवेन्द्रसूरि वे दोनों मंत्र बिसार बैठे।

देवेन्द्रसूरिजी को, हालाँकि पीछे से काफी पछतावा हुआ.... पर बात गई और रात गई!

शासनदेवी ने दोनों महानुभावों को मंत्रशक्ति के जरिये उठाकर पाटन में उनके गुरुदेव देवचन्द्रसूरिजी के पास रख दिये। शासनदेवी अदृश्य हो गयी।

देवेन्द्रसूरिजी और सोमचन्द्र मुनि के मुँह से चमत्कारिक घटना सुनकर गुरुदेव देवचन्द्रसूरिजी अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। संघ के अग्रणी भी समग्र वृतान्त सुनकर आनन्दित हुए।

देवचन्द्रसूरिजी ने सोचा :

यह सोमचन्द्र मुनि सिद्ध सारस्वत है। छोटी उम्र में वह शास्त्रों का पारंगत बना है। शासनदेवी ने प्रसन्न होकर उसे दो मंत्र दिये हैं। ये सारी विशिष्ट शक्तियाँ होने पर भी यह विनीत है, नम्र है, विवेक उसके हर बरताव में है। बुद्धिमान, गुणवान, रुपवान, और भाग्यवान ऐसे मेरे इस प्रिय शिष्य को मैं आचार्यपद प्रदान करूँ!'

देवचन्द्रसूरिजी ने पाटन के संघ को एकत्र कर के सोमचन्द्र मुनि को आचार्यपदवी देने की अपनी मंशा जाहिर की।

संघ ने बड़े हर्षोल्लास के साथ अनुमोदन किया।

वैशाख शुक्ल तृतीया का पवित्र दिन तय किया गया।

परमात्मभक्ति का भव्य महोत्सव रचाया गया।

गुजरात के गाँव-गाँव और नगर-नगर में आमंत्रण पत्र भिजवाये गये।

चारों ओर उल्लास.... उमंग और उत्साह का सागर उमड़ने लगा।

शुभ मुहूर्त की पावन घड़ी में गुरुदेव ने सोमचन्द्र मुनि को आचार्य पद प्रदान किया। उनका नाम 'हेमचन्द्रसूरि' घोषित किया गया।

हजारों स्त्री-पुरुषों की उपस्थित भीड़ ने 'नूतन आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजी' के नाम का जयजयकार किया।

पाटन की गली-गली और बाजार-चौराहों पर छोटी उम्र में जिनशासन का उच्च आचार्यपद पानेवाले हेमचन्द्रसूरिजी के गुण गाये जाने लगे !

अब से हम भी सोमचन्द्रमुनि को आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजी के नाम से जानेंगे।

❖ ❖ ❖

५. 'सिद्धहेम' व्याकरण की रचना

- यौवन वय!

- ऊँची सप्रमाण देह!

- मोहक एवं तेजस्वी चेहरा!

- काली-काली दाढ़ी-मूँछ!

- शरीर पर लपेटे हुए श्वेत वस्त्र!

- बगल में रजोहरण और हाथ में काष्ठ दण्ड!

- जमीन पर निगाहें रखकर आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजी पाटन के राजमार्ग पर चले जा रहे हैं। उनका अनुसरण करते हुए उनके दो विनीत शिष्य पीछे-पीछे चले आ रहे हैं।

उस समय, उस राजमार्ग पर सामने की ओर से गुजरात के राजा सिद्धराज की सवारी आ रही थी। राजा हाथी के औहदे पर आसीन था। नगर का अवलोकन कर रहा था।

प्रजाजन भी अपने प्रिय और पराक्रमी राजा को दोनों हाथ जोड़कर... उसका अभिवादन कर रहे थे।

राजा की निगाह अचानक हेमचन्द्रसूरि पर पड़ी। प्रतापी और प्रभावशाली आचार्य को देखकर राजा ठगा-ठगा सा रह गया। उसके मन में प्रश्न जगा : 'यह साधु पुरुष कौन होंगे? मैंने आज तक ऐसे तेजस्वी और युवान साधु को देखा नहीं है!'

इतने में तो आचार्य हाथी के निकट आ गये। राजा और आचार्य की आँखें मिली। राजा ने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। आचार्य ने दाहिना हाथ ऊपर उठाते हुए आशीर्वाद मुद्रा में 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद दिया।

राजा ने हाथी को रोका। आचार्यदेव से विनति की : 'गुरूदेव, कुछ सुनाइये।' तुरन्त ही आचार्यदेव के मुखारविन्द से एक श्लोक निकला :

'सिद्धराज! गजराजमुच्चकैरग्रतो कुरू यथा च वीक्ष्य तम्।
संत्रस्तु हरितां मतंगजा स्तैः किमद्यभवतैव भूधृता?

'सिद्धराज, तुमने गजराज को रोक क्यों दिया? उसे एकदम गति से आगे बढ़ाओ ताकि उसे देखकर सभी दिग्गज संत्रस्त होकर भाग जाएँ। चूँकि अब तो पृथ्वी का सारा भार तुमने उठा लिया है! फिर उन दिग्गजों की जरूरत क्या है?'

आचार्यदेव की कल्पना शक्ति से और शीघ्र की हुई काव्यरचना से राजा बड़ा प्रभावित हुआ, साथ ही प्रसन्न भी। उसने आचार्यदेव से प्रार्थना की :

'गुरुदेव, मुझ पर कृपा करके, प्रतिदिन आप राजसभा में पधारियेगा।'

'राजन्, अनुकूलता के मुताबिक तुम्हारे पास आने के लिए कोशिश करेंगे।' आचार्यदेव ने प्रसन्न वदन और प्रोत्फुल्ल नयन से 'धर्मलाभ' के आशीर्वाद दिये और आगे चल दिये।

राजा सिद्धराज के साथ यह पहली मुलाकात थी। परन्तु राजा के दिल में आचार्यदेव बस गये! इसके बाद तो अक्सर आचार्यदेव सिद्धराज की राजसभा में जाने लगे। आचार्यदेव की मधुर और प्रभावशाली वाणी का राजा पर काफी असर होने लगा। जैनधर्म की महानता और श्रेष्ठता उसकी समझ में आई। वह जैनधर्म की ओर काफी हद तक आकर्षित हुआ।

विक्रम संवत ११९३ का समय था।

राजा सिद्धराज ने मालवा (मध्य भारत) के राजा यशोवर्म को पराजित करके... पाटन में प्रवेश किया था। बरसों का उसका सपना साकार हुआ था। उसे केवल मालवा के राज्य का ही आकर्षण नहीं था, उसे मालवा की कला, साहित्य, संस्कार भी अच्छे लगते थे। वह सब उसे गुजरात में लाना था। गुजरात को संस्कार और साहित्य से समृद्ध करना था। पाटन को कलानगरी बनाने की उसकी ख्वाहिश थी।

सिद्धराज की महत्वाकांक्षा थी गुजरात को विशाल साम्राज्य में परिवर्तित करने की। उसे खुद चक्रवर्ती महाराजा बनने के अरमान थे। दुनियाभर के विद्वान गुजरात की ओर आकर्षित हों, वैसा माहौल उसे रचाना था। गुजरात की राजधानी पाटन को सरस्वती की क्रीड़ास्थली बनाना था। वैसे भी पाटन सरस्वती नदी के किनारे पर ही बसा हुआ था।

पाटन की प्रजा ने सिद्धराज का शानदार स्वागत किया। राजसभा का आयोजन हुआ।

सभी धर्मों के विद्वान, साधु-संन्यासी-फकीर राजा को आशीर्वाद देने के लिए राजभवन में आने लगे।

आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजी भी राजसभा में पधारे। उन्होंने रसभरपूर काव्य में राजा सिद्धराज की प्रशंसा को गूँथी। उन्होंने कहा :

'ओ कामधेनु! तू तेरे गोमय रस से धरती का सिंचन कर!

ओ रत्नाकर! तू अपने मोतियों से स्वस्तिक रचा!

ओ चन्द्र! पूर्ण कुंभ बन जा! ओ दिग्गजो...तुम अपनी सूंड उन्नत करके कल्पवृक्ष के पत्तें ले आओ और तोरण लगाओ! वास्तव में सिद्धराज पृथ्वी को जीतकर यहाँ आया है!'

सिद्धराज काव्यरचना सुनकर खुश हो उठा। उसके मन में आचार्यदेव के प्रति प्रेम बढ़ गया। इससे दूसरे धर्म के विद्वान इर्ष्या से जलने लगे। इसमें भी ब्राह्मण पंडित तो मन ही मन कुढ़ने लगे। वे बात-बात में आचार्यदेव को ताना कसने लगे :

'अरे...हेमाचार्य की विद्वत्ता चाहे जितनी हो, पर आखिर वह सब हमारे व्याकरण ग्रन्थों पर आधारित ही है ना?'

उस अरसे में मालवा की धारा नगरी का विशाल ज्ञानभण्डार, सैंकड़ों बैलगाड़ियों में भर कर पाटन आया। उस ज्ञान भण्डार में से, सिद्धराज के हाथों में राजा भोज का लिखा हुआ एक ग्रन्थ आया। जिसका नाम था **'सरस्वती कण्ठभरण।'**

इस ग्रन्थ को देखकर राजा सिद्धराज ने सोचा कि 'ऐसा ग्रन्थ क्या मेरे गुजरात का कोई विद्वान नहीं बना सकता? ऐसा ग्रन्थ बनना चाहिए कि उस ग्रन्थ के साथ मेरा नाम जुड़े। ग्रन्थ अमर हो जाएँ... साथ ही साथ मेरा नाम भी अमर हो जाए!'

राजसभा में राजा अपने हाथ में संस्कृत व्याकरण का वह ग्रन्थ **'सरस्वती कण्ठभरण'** लेकर बैठा हुआ था। उसने राजसभा में आसीन अनेक विद्वानों की ओर देखा। राजा ने उत्सुकता के साथ कहा :

'राजा भोज के द्वारा रचित संस्कृत व्याकरण जैसा शास्त्र, क्या गुजरात का विद्वान निर्मित नहीं कर सकता? ऐसा कोई विद्वान मेरी इस राजसभा में मौजूद नहीं है क्या? क्या ऐसा विद्वान गुजरात में पैदा नहीं हुआ?'

सारी राजसभा सकते में आ गई। सभी धुरंधर विद्वान नीची निगाह किये हुए जमीन कुरेदने लगे। सभी के चेहरे की चमक राजा की सवालिया निगाहों की तीक्ष्णता से चूर-चूर हो चुकी थी।

अचानक राजा की आँखें राजसभा में उपस्थित हेमचन्द्रसूरिजी की आँखों से मिली!

हेमचन्द्रसूरिजी खामोशी की गिरफ्त में कैद वातावरण को अपनी धीर-गंभीर आवाज से चीरते हुए बोले :

'मैं निर्माण करूँगा राजा भोज के द्वारा निर्मित व्याकरण से भी ऊँचे दर्जे का व्याकरण!

'अवश्य गुरुदेव! आप श्रेष्ठ व्याकरण की रचना करने में सक्षम हो।'

'पर इसके लिए जरूरी साधन-सामग्री, सहायक ग्रन्थ चाहिएंगे।'

'राज्य की ओर से सब कुछ उपलब्ध करवाया जाएगा।'

'तो गुजरात गर्वोन्नत हो सके साहित्य के विश्व में, वैसे व्याकरण का चन्द महीनों में ही मैं निर्माण कर दूँगा।'

आचार्यदेव ने कश्मीर से आठ ग्रन्थ मँगवाये। उन सब ग्रन्थों का अध्ययन किया। अपनी प्रतिभा को पूरी तरह दाव पर लगा कर उन्होंने नये व्याकरण (Grammar) की रचना की। एक साल जितने समय में सवा लाख श्लोकों की रचना करके व्याकरण ग्रन्थ का निर्माण किया।

इस संस्कृत व्याकरण का नाम **'सिद्धहेम व्याकरण'** रखा। सिद्ध से 'सिद्धराजा' की स्मृति होती थी, और 'हेम' शब्द 'हेमचन्द्राचार्य' का परिचायक था।

आचार्यदेव ने राजा सिद्धराज को सूचना दी :

'राजेश्वर, तुम्हारी इच्छा-महत्वाकाँक्षा के मुताबिक संस्कृत व्याकरण की रचना हो चुकी है।'

'इतने कम समय में?'

'हाँ...माँ सरस्वती की कृपा से और गुरुजनों के अनुग्रह से!'

राजा सिद्धराज तो खुशी के मारे झूम उठा। उसने कहा :

'गुरुदेव, उस महान, ग्रन्थ को मैं ऐसे ही ग्रहण नहीं करूँगा। हाथी के औहदे पर उसे रखकर पाटन के राजमार्गों पर जुलूस के साथ घुमाऊँगा। बड़े हर्षोल्लास से राजसभा में ले जाऊँगा।'

राजा ने अपना विशेष हाथी सजाया। उस पर सिंहासन रखवाकर सोने की थाली में उस 'व्याकरण ग्रन्थ' को रखा। उस पर श्वेत छत्र रखवाया।

राज परिवार की दो युवतियाँ ग्रन्थ के दाँये-बाँये चँवर डुलोने लगी। हजारों स्त्री-पुरुष उस ग्रन्थ की शोभायात्रा में शामिल हुए।

शोभायात्रा जब राजमहल के द्वार पर पहुँची तब राजा ने स्वयं स्वर्ण-रजत के फूलों से ग्रन्थ का स्वागत किया। उत्तम द्रव्यों से ग्रन्थ की पूजा की गई। गुरुदेव हेमचन्द्रसूरिजी की स्तुति गाई गई। उस ग्रन्थ को आदरपूर्वक ग्रन्थालय में रखा गया।

राजसभा में गूर्जरेश्वर सिद्धराज ने घोषणा की :

आचार्यदेव ने **'सिद्धहेम व्याकरण'** की रचना कर के गुजरात के यश को विश्व में फैलाया है। मेरी कीर्ति में चार चाँद लगाये हैं। और उन्होंने जिनशासन को गौरवान्वित किया है।'

इसके पश्चात् राजा ने राजपुरोहितों को बुलवाया। पाटन के विद्वान पंडितों को निमंत्रित किया और कहा :

'आप सब इस **'सिद्धहेम व्याकरण'** का अध्ययन कीजिए व बाद में औरों को इसी व्याकरण की शिक्षा दें।'

राजपुरोहित ने कहा :

'महाराजा, हम अवश्य इस ग्रन्थ का अध्ययन करेंगे.... परन्तु इसके लिए इस ग्रन्थ की एक से अधिक प्रतियाँ चाहिएँ।'

राजा ने तुरन्त आज्ञा करके गुजरात में से ३०० आलेखकों को बुलवाया और **'सिद्धहेम व्याकरण'** लिखने का कार्यभार सोंपा। कुछ ही महीनों में प्रस्तुत ग्रन्थ की अनेक प्रतियाँ तैयार हो गयी।

आज भी पाटन में व राजस्थान में सुन्दर-स्वच्छ व कलात्मक अक्षरों से शास्त्र लिखनेवाले वैसे आलेखक (लहिए) मौजूद हैं।

तीन-तीन साल तक विद्वानों ने इस ग्रन्थ का अध्ययन किया। उन्होंने राजा सिद्धराज के समक्ष ग्रन्थ की दिल खोलकर प्रशंसा की।

'अब तक के उपलब्ध व्याकरण ग्रन्थों में यह ग्रन्थ श्रेष्ठ है।'

राजा ने इस ग्रन्थ की एक से अनेक प्रतियाँ भारत के तमाम राज्यों में भेंट स्वरूप भेजीं। राज्यों के राजाओं ने आदर व सम्मान के साथ उस भेंट को स्वीकार किया। अपने-अपने ग्रन्थालयों में उस ग्रन्थ को रखा!

'कौए तो सब जगह काले ही होते हैं।'

हेमचन्द्रसूरिजी की बड़ी भारी प्रशंसा होने लगी। राजसभा में उनका

मानसम्मान बढ़ने लगा। राजा का नैकट्य उन्हें प्राप्त होने लगा। इससे कुछ विद्वान पंडित उनसे जलने लगे। उन्होंने एकत्र होकर सोचा : हम राजा के गले एक बात उतार दें....कि 'हेमचन्द्राचार्य ने इतना बड़ा व्याकरण ग्रन्थ तो बनाया, परन्तु उस ग्रन्थ में प्रस्तावना या प्रशस्ति में कहीं भी आपका नाम या आपके पूर्वजों के नाम.... राजा मूलराज वगैरह का नामोल्लेख तक भी नहीं है। कितना गर्विष्ठ है वह जैनाचार्य!' यदि इस तरह कहेंगे तो कच्चे कान का राजा अवश्य जैनाचार्य के प्रति क्रोधित होगा, और उस ग्रन्थ को सरस्वती नदी में फिंकवा देगा!' सभी मिलकर गये राजा के पास।

राजा से जाकर सारी बात बढ़ा-बढ़ा कर कही। राजा ने बात सुनी। राजा ने कहा :

'ठीक है, मैं उनसे इस बारे में पूछूँगा।'

इधर हेमचन्द्रसूरिजी को इस बात का पता लग गया था। उन्होंने शीघ्र ही राजा सिद्धराज और उसके पूर्वजों की प्रशस्ति कविता लिखकर उसी ग्रन्थ में जोड़ दी। जब राजा ने इस बारे में पूछा तो हेमचन्द्रसूरिजी ने ग्रन्थ खोलकर वे पंक्तियाँ पढ़कर सुना दीं।

राजा संतुष्ट भी हुआ, प्रसन्न भी।

हेमचन्द्रसूरिजी द्वारा रचित वह **'सिद्धहेम व्याकरण'** आज भी, संस्कृत भाषा सीखने वालों के लिए काफी सहायक है। कई लोग उसका अध्ययन करते हैं। विदेशों मे अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने तो इस ग्रन्थ का उच्चतम मूल्यांकन किया है।

'सिद्धहेम व्याकरण' ग्रन्थ अपने आप में अद्वितीय है! अनुपम है!

❖ ❖ ❖

६. गुरुदेव की निःस्पृहता

गुजरात के राजा सिद्धराज को हर बात का सुख था। दुःख था तो सिर्फ एक ही बात का... उसे कोई सन्तान नहीं थी। नहीं था पुत्र, नहीं थी पुत्री।

कभी... आराम के क्षणों में राजा को यह दुःख काफी सताता था। राजा अपने मन की पीड़ा रानी के सामने व्यक्त करता। रानी उसे ढाढ़स बँधाती, आश्वासन देती और इस तरह बरसों गुजर गये।

एक दिन हताशा के गहरे सागर में डूबे हुए राजा ने रानी से कहा :

'अब मैं बूढ़ा हो चला हूँ। फिर भी मुझे पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई! मेरा इतना विशाल और समृद्ध साम्राज्य होने पर भी यह सब निरर्थक प्रतीत होता है, बिना पुत्र के!

- सुन्दर कमल के फूलों से रहित सरोवर शोभा नहीं देता!
- सूर्य की रोशनी के बिना दिन अच्छा नहीं दिखता!
- दान के बगैर वैभव का अर्थ हीं क्या है?
- मधुर वाणी के बिना गौरव का माइना ही क्या है?
- समृद्धि के बिना घर की शोभा नहीं रहती... वैसे ही -

पुत्र के बिना कुल की शोभा नहीं होती! संसार में सारभूत वस्तुएँ दो ही हैं : एक पैसा और दूसरा पुत्र! इन दो के बिना जीवन व्यर्थ है, फिजूल है! पुत्र बिना का कुल, संध्या के रंगों की भाँति एवं बिजली की चमक-दमक की भाँति शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।'

रानी ने मधुर शब्दों में आश्वासन देते हुए कहा :

'स्वामिन्, जो बात भाग्य के अधीन है... उसके लिए अफसोस करने से क्या मतलब? हमारे ऊपर देवों की कृपा नहीं है! अपने दिल को पुत्र-सुख का आनन्द नहीं मिलना होगा... पूर्वजन्म में हमने पुण्यकर्म नहीं किये होंगे, इसलिए इस जन्म में हम पुण्योपार्जन के लिए कुछ करें।

- गुरुजनों के प्रति ज्यादा भक्तिभाव बनाये रखें।
- परमात्मा की दिल लगाकर पूजा करें।
- इच्छित फल को देनेवाली तीर्थयात्रा करें!

इस प्रकार की धर्मआराधना करने से ही कभी तो पुत्र का सुख मिल सकेगा हमें!'

राजा के मन में रानी की बात जँच गयी।

राजा ने सर्व प्रथम तीर्थयात्रा करने का निश्चय किया।

अपना निर्णय बताने के लिए वह हेमचन्द्रसूरि के पास गया।

'गुरुदेव, मेरी इच्छा तीर्थयात्रा करने की है। पर मैं आपके साथ तीर्थयात्रा करना चाहता हूँ। मेरी साग्रह विनति है कि आप तीर्थयात्रा में साथ पधारने की कृपा करें।'

आचार्यदेव ने कहा : 'राजन्, तीर्थयात्रा करने की तुम्हारी भावना अति उत्तम है और तुम्हारा आग्रह है तो हम भी तुम्हारे साथ अवश्य आएंगे।'

राजा प्रसन्न हो उठा। उसने आचार्यदेव का बहुत आभार व्यक्त किया।

यात्रा की तैयारियाँ होने लगी।

प्रयाण का शुभ मुहूर्त भी निकाला गया।

मंगलवेला में राजा ने शत्रुंजय गिरिराज की ओर प्रयाण किया।

प्रजाजनों ने प्रसन्न हृदय से राजा को विदाई दी।

अनेक मुनिवरों को साथ लेकर आचार्यदेव ने भी राजा के साथ प्रस्थान किया।

राजा सिद्धराज रानी के साथ रथ में बैठा हुआ था। उसने आचार्यदेव से प्रार्थना की :

'गुरुदेव, मैं आप के लिए एक रथ देता हूँ। आप पैदल मत चलिए। वाहन का प्रयोग कीजिए। उस में बैठिए।'

आचार्यदेव ने कहा :

'हम कभी वाहन में नहीं बैठते! पैरों में जूते पहने बगैर हमें तो नंगे पैर ही पैदल चलना होता है। यदि हम वाहन में बैठें तो वाहन का भार ढोनेवाले घोड़ों को कष्ट होगा। और वाहन के नीचे अनेक छोटे-बड़े जीव-जंतुओं की हिंसा होगी, इसलिए राजन्! हम वाहन में नहीं बैठेंगे।'

राजा को आचार्यदेव की बात अच्छी नहीं लगी। उसे गुस्सा आया। अपनी बात का पत्ता कटते देखकर वह नाराज हो उठा। उसने नाराजगी जताते हुए कहा :

'ठीक है.... आप बड़े महात्मा कहलाते हैं... पर मुझे तो तुम मूर्ख प्रतीत होते हो! जड़ हो, कुछ समझते ही नहीं हो!'

आचार्यदेव मौन रहे।

सिद्धराज का रथ आगे चला। आचार्यदेव कुछ दूरी रखते हुए चलने लगे।

सिद्धराज आचार्यदेव के पास जाता नहीं है।

आचार्यदेव सिद्धराज के पास नहीं जाते हैं!

एक दिन गया,

दूसरा दिन गया... तीसरा दिन भी गुजर गया...।

राजा सिद्धराज व्याकुल हो उठा।

'लगता है... अवश्य, आचार्यदेव मुझसे नाराज हो गये हैं।

मेरी प्रार्थना से वे मेरे साथ आये हैं, मुझे उनके दिल को दुखाना नहीं चाहिए! उन्हें प्रसन्न रखना चाहिए।'

चौथे दिन राजा आचार्यदेव का जहाँ पर पड़ाव था, वहाँ पर गया। उस वक्त आचार्यदेव अपने शिष्य मुनिवरों के साथ बैठकर भोजन कर रहे थे।

राजा ने आचार्यदेव और मुनियों के पात्र में रूखी-सूखी रोटी और पानी की कांजी...राब देखी। राजा सोचने लगा :

'ओह, ये जैन साधु कितनी कठोर तपश्चर्या करते हैं! आहार कितना नीरस और देखने में अच्छा नहीं लगे... वैसा लेते हैं, और पैदल चलते हैं! सचमुच, ये महात्मा लोग तो पूजनीय हैं। सम्मान के लायक हैं। मैंने उन्हें अनुचित शब्द कहकर उनका अपमान किया, वह गलत किया है। मैं उनसे क्षमा मागूँगा।'

आहारपानी कर के आचार्यदेव निवृत्त हुए।

राजा ने, आचार्यदेव के चरणों में गिरकर माफी माँगी :

'गुरुदेव, आपने मेरे द्वारा दिये गये वाहन को स्वीकार नहीं किया... इसके लिए मुझे गुस्सा आ गया और मैंने आपको अयोग्य कटु शब्द कहे। मुझे इसके लिए खेद है, मुझे पश्चाताप हुआ है, मैं आपके पास क्षमा माँगने के लिए आया हूँ। आप मुझे माफ करें!'

आचार्यदेव ने शान्त स्वर में कहा :

'राजन्, तुमने ऐसी कौनसी भारी गलती कर ली कि तुम्हें क्षमा माँगनी पड़े? तुम्हारा कोई दोष नहीं है...। रास्ते में हम तुम से मिले नहीं इसका मतलब यह मत करना कि 'हम तुम्हारे ऊपर गुस्सा हैं!' दरअसल हमें तुम्हारे समागम की आवश्यकता ही नहीं थी। चूँकि

- हम पैदल चलते हैं।
- नीरस भोजन करते हैं... वह भी दिन में एक बार!
- जीर्ण कपड़े पहनते हैं!
- रात में भूमिशयन करते हैं!
- सदा निःसंग रहते हैं और
- हृदय में एक मात्र परम ज्योति का ध्यान करते हैं!

अब फिर... इसमें हमें राजा की आवश्यकता कहाँ महसूस होगी ?'

राजा सिद्धराज आचार्यदेव की वाणी सुनता ही रहा! उसे समझ में आ गया कि आचार्यदेव तो निःसंग एवं विरक्त हैं। उन्हें मेरी जरूरत होगी भी क्यों? पर जरूरत तो मुझे उनकी है! मुझे श्रेष्ठ गुरुदेव मिल गये हैं!'

राजा ने आचार्यदेव से क्षमायाचना की।

आचार्यदेव ने आशीर्वाद दिये।

राजा अपने पड़ाव पर लौटा। अब तो नियमित आचार्यदेव से मिलने के लिए आता है! उनके चरणों में बैठकर जैन धर्म का तत्त्वज्ञान प्राप्त करता है।

यों कुछ ही दिनों की यात्रा के पश्चात् उनका कारवाँ पालीताना पहुँच गया। शत्रुंजय गिरिराज के दर्शन करके सिद्धराज का दिल विभोर हो उठा।

सभी का मन-मयूर नृत्य करने लगा।

❖ ❖ ❖

७. तीर्थयात्रा

जो भवसागर से पार लगाये उसका नाम तीर्थ!

जो दुःखों को दरिये में से उबारे... पार उतारे... उसे कहते हैं तीर्थ!

सभी तीर्थों का राजा यानी शत्रुंजय!

शत्रुंजय-गिरिराज के कंकर-कंकर पर अनंत-अनंत आत्माएँ मुक्त हुई हैं। सिद्ध हुई हैं... बुद्धत्व को प्राप्त हुई हैं।

राजा सिद्धराज परिवार के साथ पालीताना पहुँचा। पालीताना की प्रजा ने गुर्जरेश्वर का भव्य स्वागत किया :

राजा ने गुरुदेव हेमचन्द्रसूरिजी से कहा :

'गुरुदेव, हम कल सबेरे गिरिराज पर चढ़ेंगे। और भगवान ऋषभदेव के दर्शन-पूजन कर के धन्यता का अनुभव करेंगे। आज तो विश्राम कर के जरा स्वस्थ हो जाएँ।'

गुरुदेव ने अनुमति दी।

सभी अपने-अपने प्राभातिक कार्यों में प्रवृत्त हुए।

दिन पूरा हो गया... और रात भी गुजर गई।

दूसरे दिन सबेरे आचार्यदेव वगैरह मुनिवरों के साथ राजा और राजपरिवार, शत्रुंजय पहाड़ पर चढ़ने लगा। सभी के मन उल्लसित थे। सभी के हृदय में भगवान ऋषभदेव के दर्शन करने की तीव्र तमन्ना थी।

सभी गिरिराज के शिखर पर पहुँचे। भगवान ऋषभदेव के दर्शन-वंदन करके सभी धन्यता का अनुभव करने लगे। राजा और राजपरिवार ने भगवान की भावपूर्वक पूजा भी की। सभी लोग आचार्यदेव के पीछे बैठ गये। आचार्यदेव ने संस्कृत भाषा में नये-नये काव्य रचकर भगवान की स्तुति की। आचार्यदेव ने उन स्तुतियों के भावों को गुर्जर भाषा में गूँथते हुए गद्य-स्तवना भी की। सभी के दिल परमात्मा भक्ति के अपूर्व आनन्द से छलक रहे थे।

करीब तीन घंटे गिरिराज पर बिताकर सभी पहाड़ उतरने लगे।

राजा सिद्धराज ने श्रद्धा और भक्ति भाव से गद्‌गद् होकर गुरुदेव से कहा

: 'गुरुदेव, कितना प्रभावी तीर्थ है यह! तीन-तीन घंटे गुजर गये फिर भी मन में तनिक भी सांसारिक विचार नहीं आये!

धन्य जिनशासन! प्रभु! इस महातीर्थ की भक्ति के लिए भगवान ऋषभदेव की पूजा-अर्चना के लिए मैं बारह गाँव समर्पण करता हूँ। उन गाँवों की महसूल-आय इस तीर्थ के लिए ही प्रयोग की जाएगी।'

गुरुदेव ने कहा :

'राजेश्वर, तुम्हारे दिल में भगवान ऋषभदेव के प्रति इतनी भक्ति उमड़ रही देखकर सचमुच, मेरा मन भी हर्षित है। यह तुम्हें अच्छा लगा... इससे तुम धन्य हुए हो!'

'गुरुदेव, पादलिप्तपुर में पहुँच कर मुझे कौन से सत्कार्य करने चाहिएँ? इसके लिए समुचित मार्गदर्शन देने की कृपा करें।'

'राजन्, गिरिराज की तलहटी में तुम्हारी ओर से हमेशा के लिए भोजनालय चालू होना चाहिए ताकि जो भी यात्री यहाँ पर आये वह भूखा न रहे। पेट भर भोजन उसे मिले।

इसी तरह पादलिप्तपुर नगर में भी गरीब लोगों के लिए राज्य की ओर से सदाव्रत चालू करना चाहिए, और बरसों तक वह बराबर चलता रहे, वैसी व्यवस्था करनी चाहिए।

इस तरह, आज जब तुम नीचे उतरो तब तलहटी से लेकर पादलिप्तपुर नगर तक याचकों को, गरीबों को, विकलांगों को और अंधजनों को दिल खोलकर दान देना, ताकि बरसों तक लोग याद करते रहें कि 'गूर्जरेश्वर राजा सिद्धराज यहाँ भगवान ऋषभदेव की यात्रा करने के लिए आये थे! इस तरह राजा बार-बार आते रहें तो अच्छा!'

गुरुदेव की प्रेरणा के मुताबिक राजा ने सदाव्रत प्रारम्भ कर दिये। याचकों को दान देना प्रारम्भ किया।

राजा सिद्धराज जब बरसे तो फिर दिल खोलकर बरसते रहे!

- उसने सोनामुहरें दी...
- उसने सुन्दर वस्त्र दिये...
- उसने घोड़े दिये... बैल दिये...
- किसानों को खेती के लिए जमीन दी...

राजा के पास जो भी आया... राजा से जो भी मिला... वह याचक, याचक न रहा। भिखारी, भिखारी न रहा। सभी के दीदार बदल गये।

पूरे पादलिप्तपुर में सिद्धराज का जयजयकार हो उठा। सिद्धराज ने गिरिराज की यात्रा करके और दिल खोलकर दान देकर अपूर्व पुण्योपार्जन किया।

आचार्यदेव के साथ संघ ने वहाँ से गिरनार की ओर प्रस्थान किया।

रास्ते में आचार्यदेव ने राजा को गिरनार और भगवान नेमनाथ का परिचय दिया। भगवान नेमनाथ का जीवन चरित्र सुनकर राजा सिद्धराज आश्चर्यचकित् हो उठा।

संघ गिरनार पहुँचा।

जिस दिन पहुँचे उसी दिन सभी पहाड़ पर चढ़े। गिरनार पर्वत पर नैसर्गिक सौन्दर्य कदम-कदम पर बिछा हुआ था। घटादार आम्र वृक्षों की पंक्तियाँ... नीम... आसोपालव-अशोकवृक्ष वगैरह विविध वृक्षों की डालियों पर कोयल... तोता... वगैरह रंग-बिरंगे पक्षीगण मधुर गूञ्जन कर रहे थे। हवा के संग-संग झूल रही डालियों पर से खुशबुदार फूल गिरते रहते थे। घटादार वृक्षों के बीच उगे हुए ऊँचे बाँस के छिद्रों में हवा जाती और बाहर आती... इस प्रक्रिया से मधुर ध्वनि बहती रहती वातावरण में! जैसे की वनदेवी अपनी दिव्य वीणा के सूरों को छेड़ती हुई राजा सिद्धराज की कीर्तिगाथा गा रही हो!

आचार्यदेव के साथ सभी भगवान नेमनाथ के भव्य मंदिर में पहुँचे। प्रभु के दर्शन करके सभी का मन मयूर नाच उठा। भावविभोर होकर सभी ने प्रभु को नमन किया।

राजा ने राजपरिवार के साथ, स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहनकर भगवान का जलाभिषेक किया। फिर शुद्ध-मुलायम वस्त्र से भगवान की मूर्ति को स्वच्छ किया। इसके बाद चंदन और पुष्पों से प्रभु की पूजा की। प्रभुजी के समक्ष सोने के बाजठ पर रत्नों को बिछाकर स्वस्तिक रचाया। सुवर्णमुद्राएँ अर्पण कीं।

फिर सभी गुरुदेव के इर्दगिर्द बैठ गये। गुरुदेव ने भावपूजा की। नये-नये काव्यों के माध्यम से गुरुदेव ने परमात्मा नेमनाथ की स्तवना की। सभी की आँखें खुशी के आँसुओं से भर आईं। रोमराजि विकस्वर हो उठी।

राजा सिद्धराज ने गद्‌गद् स्वर से प्रभु को बार-बार पंचांग प्रणिपात-वंदना की।

उस समय मंदिर के विवेकी पुजारी ने राजा को बैठने के लिए सुन्दर आसन बिछाया। तब राजा ने इन्कार किया, और कहा :

'तीर्थक्षेत्र में राजा को आसन पर बैठना नहीं चाहिए... वैसे ही खाट पर या पलंग पर सोना नहीं चाहिए। तीर्थक्षेत्र में किसी भी मनुष्य को दही का भोजन नहीं करना चाहिए।'

पुजारी ने सविनय राजा की बात का अनुमोदन किया।

राजा ने पुजारियों को सुन्दर वस्त्र अर्पण किये और सोनामुहरें देकर संतुष्ट किया।

तीर्थयात्रा का अपूर्व आनन्द लूटकर, गुरुदेव के साथ सभी पहाड़ से नीचे उतर कर तलहटी में आये। राजा सिद्धराज ने वहाँ पर भी सदाव्रत प्रारम्भ करवाया। याचकों को दान दिया। जूनागढ़ में जाकर भी सदाव्रत खुलवाये और गरीबों के दुःख दूर किये।

सिद्धराज ने गुरुदेव से कहा :

'भगवंत, यहाँ से हम सभी प्रभास पाटन चलें। वहाँ पर समुद्र के किनारे स्थित भगवान सोमनाथ के दर्शन करें।'

आचार्यदेव ने सहमति दी।

सभी प्रभास पाटन पहुँचे।

भगवान सोमनाथ के मंदिर में गये।

राजा सिद्धराज का मन साशंक था कि 'गुरुदेव शायद सोमनाथ महादेव को प्रणाम करेंगे या नहीं!' परन्तु आचार्यदेव ने तो महादेव को भावपूर्वक प्रणाम किया। इतना ही नहीं वहाँ पर बैठकर महादेव की स्तुति गाने लगे। चौवालीस श्लोक रचकर प्रार्थना की।

भव बीजांकुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै।।

'जन्मरूप बीज के अंकुर को पैदा करनेवाले राग वगैरह जिनके नष्ट हो गये हैं... वे फिर ब्रह्मा हो, विष्णु हो, शिव हो, या जिन हो... उन्हें मेरा नमस्कार हो!'

(बाद में यह पूरी प्रार्थना 'महादेव स्तोत्र' के नाम से प्रख्यात हुई - आज भी यह स्तोत्र उपलब्ध है)

राजा को महादेव का स्वरुप समझाया। राजा सिद्धराज प्रसन्न हो उठा।

राजा ने गुरुदेव से कहा :

'भगवंत, आपने मुझ पर असीम कृपा की है। मुझे तीर्थयात्रा करवा कर अनहद उपकार किया है! अब हम पाटन वापस लौटें, पर इससे पूर्व कोड़ीनार गाँव में जगज्जननी अंबिका देवी के दर्शन-पूजन करके आएं!'

गुरुदेव ने अनुमति दी।

संघ कोड़ीनार की ओर चला।

❖ ❖ ❖

८. कृपालु गुरुदेव

कोड़ीनार की अम्बिकादेवी यानी हाजराहजूर देवी! उसके प्रभावों की चर्चा सौराष्ट्र और गुजरात तक फैली हुई थी! दुखियों के दुःखों को दूर करके सुख के फूल खिलानेवाली देवी के दर्शन करने के लिये लोग दूर-दूर से कोड़ीनार आते थे! कइयों के अरमान पूरे होते! कइयों की उम्मीदों के बगीचे में बहार छा जाती!

आचार्यदेव के साथ राजा सिद्धराज का काफिला कोड़ीनार पहुँच गया। राजा ने देवी के दर्शन किये। पूजन किया।

राजा ने आचार्यदेव से अति नम्रता के साथ विनति की :

'गुरुदेव, मेरे पास सोने-चाँदी के भण्डार भरे हुए हैं। हीरे-मोती के खजाने भरे पड़े हैं। हाथी-घोड़े और रथ भी बेशुमार हैं, और मेरा राज्य भी बड़ा विशाल है, फिर भी प्रभु! मैं और रानी दोनों काफी दुःखी हैं! हमारे मन में संताप की आग धधक रही है। कारण आपसे छिपा नहीं है! हमें संतान की कमी है। इस कमी ने सारे भरे-पूरे राज्य को खाली-खाली बना रखा है।

गुरुदेव... मेरी आपसे एक नम्र प्रार्थना है : आप देवी अंबिका की आराधना करें और देवी से पूछें कि मुझे पुत्र मिलेगा भी या नहीं? और मेरे बाद गुजरात का राज्य किसके हाथों में जाएगा?'

आचार्यदेव ने गंभीरता से कहा :

'ठीक है, मैं देवी से पूछ लूँगा।'

आचार्यदेव ने तीन उपवास किये। देवी के मंदिर में बैठ गये। ध्यान में निमग्न होकर अपनी समग्रता को देवी अंबिका के स्मरण में केन्द्रित कर दी। तीसरे दिन मध्यरात्री के समय देवी अंबिका, गुरुदेव के सामने प्रगट हुई और गुरुदेव को दोनों हाथ जोड़कर वंदना की।

'गुरुदेव, मुझे किसलिए याद किया?'

'गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह के भाग्य में पुत्र प्राप्ति का योग है या नहीं? यह पूछने के लिये आपको याद किया है।'

देवी ने कहा : 'राजा के पूर्वजन्म के पापकर्मों के कारण उसे पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी।'

गुरुदेव ने पूछा : 'तब फिर सिद्धराज की मृत्यु के पश्चात् गुजरात का राजा कौन होगा?'

देवी ने कहा : त्रिभुवनपाल का पुत्र कुमारपाल! वह महान शूरवीर होगा। पराक्रमी होगा। वह राजा होकर जैन धर्म को काफी फैलाएगा। अहिंसा धर्म का प्रसार करेगा।'

इतना कहकर देवी अदृश्य हो गई।

आचार्यदेव अपने स्थान पर आये। तीन दिन के उपवास का पारणा किया। राजा सिद्धराज काफी उत्सुक था परिणाम जानने के लिए। वह गुरुदेव के पास आया। गुरुदेव को वंदना की।

उनके चरणों में विनयपूर्वक बैठा।

गुरुदेव ने कहा :

'राजेश्वर, तुम्हारे भाग्य में पुत्र का योग नहीं है-ऐसा देवी ने कहा। तुम्हारे बाद गुजरात का राजा कुमारपाल होगा।'

'कौन कुमारपाल?' सिद्धराज ने चकित् होकर पूछा।

'त्रिभुवनपाल का पुत्र कुमारपाल!' गुरुदेव ने देवी का कथन बताया।

'ओह्... त्रिभुवनपाल का बेटा?' राजा सिद्धराज का मन खिन्न हो उठा।

'राजन्, खेद न करें! पूर्वजन्म में तुम्हारे जीवात्मा ने जो पाप कर्म बाँधे हैं - वे अंतराय बनकर खड़े हैं तुम्हारे पुत्र सुख की राह में! इसलिए पुत्र-प्राप्ति शक्य नहीं है। कोई उपाय कारगर नहीं होगा। इसलिए अफसोस करना छोड़ दें! जो संभव नहीं है, उसकी इच्छा करने से क्या? उसके लिए अफसोस की आग में जलने से क्या?'

आचार्यदेव ने सिद्धराज के अशांत मन को शांति देने के लिए उपदेश दिया। परन्तु पुत्र-प्राप्ति की तीव्र इच्छा के कारण पैदा हुए दुःख के सागर में राजा डूब गया था। उनका दुःख दूर हुआ नहीं कि हलका भी हुआ नहीं!

❍ ❍ ❍

आचार्यदेव के साथ राजा सपरिवार वापस पाटन लौटा। पाटन की प्रजा ने भव्य स्वागत किया। राजा ने गरीबों को दान दिया। नगर के सभी मंदिरों को सजाया गया। प्रजा ने महोत्सव मनाया। परन्तु राजा का अशांत एवं व्याकुल मन शान्त नहीं था। उसके मन में भयंकर अफरातफरी मची हुई थी।

आचार्यदेव उपाश्रय में चले गये। राजा राजमहल में पहुँचा। स्नान-भोजन वगैरह से निपटकर उसने पाटन के राज ज्योतिषियों को बुलवाया। ज्योतिषी आये। राजा ने सभी का स्वागत किया। ज्योतिषियों ने आसन ग्रहण किये। राजा ने प्रश्न किया :

आप सभी ज्योतिष शास्त्र में विशारद हो, आपके शास्त्रों के मुताबिक मेरे प्रश्न का सच-सच जवाब देना। 'मेरे भाग्य में पुत्र-प्राप्ति का योग है या नहीं?' यही मेरा एक सवाल है तुम सबसे!'

ज्योतिषियों ने तुरन्त प्रश्नकुण्डली रखकर उसमें से राजा के प्रश्न का जवाब ढूँढ़ने की कोशिश की। परस्पर सोच विचार करके जवाब निश्चित किया और महाराजा से कहा :

'महाराजा, आपके भाग्य में पुत्र-प्राप्ति का योग नहीं है!'

जो जवाब देवी अंबिका ने दिया था... वही जवाब ज्योतिषियों ने दिया। राजा निराश हो गया।

ज्योतिषियों का उत्तम वस्त्रों से और सोनामुहरों से स्वागत करके उन्हें बिदाई दी।

राजा सिद्धराज ने रात्रि के समय रानी से कहा :

'देवी, ज्योतिषी भी उनके ज्योतिष शास्त्र के अनुसार पुत्र-प्राप्ति की मना करते हैं। देवी अंबिका ने भी गुरुदेव को ना कही थी।'

रानी ने कहा :

'तब तो अब धर्मकार्य में मन को लगाना चाहिए। अपने नसीब में पुत्र का सुख है ही नहीं... यों समझकर उस बात का स्वीकार कर लेना चाहिए।'

'देवी, इस प्रकार निराश होकर बैठे रहने से कार्यसिद्धि होगी नहीं, हमें हमारी कोशिश चालू रखनी चाहिए।'

'पर अब और कौन सा उपाय बचा है, जिसके लिए आप सोच रहे हो?'

'हम दोनों, यहाँ से पैदल चलकर देवपत्तन की यात्रा करें। वहाँ पर सोमनाथ महादेव की पूजा करें और खाना-पीना छोड़ कर, उनके सामने बैठ जाएँ, उनका ध्यान करें। वे भोले महादेव अवश्य प्रसन्न होंगे हम पर, और हमारी इच्छा पूर्ण करेंगे।'

रानी ने कहा : 'ठीक है... मैं आपके साथ आऊँगी! आपकी जो इच्छा होगी, वही करेंगे!'

राजा सिद्धराज ने उन्हीं विचारों में रात गुजार दी। कुछ दिन बीत गये और उसने गुप्त भेष में देवपत्तन जाने का तय किया।

यह बात राजा ने आचार्यदेव हेमचन्द्रसूरिजी से भी कही नहीं! उसे डर था 'शायद गुरुदेव इन्कार कर दें तो? उनकी इच्छा के विपरीत तो जा नहीं सकते!'

एक दिन तड़के ही राजा-रानी ने पैदल प्रयाण चालू कर दिया! रास्ते में जो मिलता है... खा लेते हैं! कुएं का पानी पीकर प्यास बुझा लेते हैं! रास्ते में आती धर्मशाला-सराय में विश्राम करते हैं और अपने गंतव्य की दिशा में आगे बढ़ते रहते हैं। अनेक कष्टों को सहते हैं! यों करते हुए एक दिन देवपत्तन पहुँच जाते हैं।

स्नान बगैरह से निपट कर राजा-रानी ने सोमनाथ महादेव की पूजा की। स्तुति की। प्रार्थना की। अन्न-जल त्याग कर दोनों महादेव के समक्ष ध्यान लगा कर बैठ गये।

तीन दिन व्यतीत हो गये। राजा-रानी जरा भी डिगे नहीं। वे समझते थे कि 'दुःख सहे बगैर देव दर्शन देंगे नहीं!' आखिर सोमनाथ महादेव, राजा-रानी के समक्ष प्रगट हुए। राजा-रानी ने खड़े होकर महादेव के चरणों में साष्टांग प्रणाम किये। महादेव ने पूछा :

'सिद्धराज, मुझे क्यों याद किया?'

'ओ भगवान्, मैं आपका भक्त हूँ। अभी तक मेरे घर के आँगन में पुत्र का पालना लगा नहीं है...। मुझे पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई है... प्रभु मुझे एक पुत्र का दान करें...। ताकि मेरा वंश चालू रहे!'

महादेव ने कहा :

'सिद्धराज, तेरी किस्मत में संतान का सुख है नहीं! तेरे बाद तेरी राजगद्दी पर महापराक्रमी कुमारपाल आयेगा... यही नियति है।'

सिद्धराज ने तनिक कड़वाहट से कहा :

'नाथ! सारी दुनिया आपको सभी के मनोरथ पूरे करने वाले देव के रूप में जानती है... मानती है, और आप मुझे एक पुत्र भी नहीं दे सकते! मेरी इतनी मुराद भी पूरी नहीं कर सकते! फिर आपकी प्रसिद्धि वह सारी बातें सच्ची हैं या झूठी?'

'तेरे भाग्य में जो है ही नहीं, वह मैं कैसे दे सकता हूँ? तेरे गत जन्म के पाप बीच में रुकावट डाले हुए खड़े हैं! राजा, पुत्र प्राप्ति के लिए तेरी योग्यता ही नहीं है, फिर मैं कर भी क्या सकता हूँ? कर्मों को झुठलाने की ताकत दुनिया में किसी के पास नहीं है!'

इतना कहकर सोमनाथ महादेव अदृश्य हो गये।

राजा-रानी मंदिर से बाहर आये। धर्मशाला में जाकर उन्होंने पारणा किया।

राजा को अत्यन्त मायूस हुआ देखकर रानी ने उसे ढाढ़स बँधाते हुए कहा :

'नाथ, क्यों इतना अफसोस कर रहे हो? देवों की बात मिथ्या नहीं होती! उनका कथन स्वीकार करें और अब पुत्र प्राप्ति की चाहना ही मन में से निकाल दें!'

सिद्धराज ने कहा :

'देवी, तुम्हारी बात सही है, पर क्या करूँ? मन मानता नहीं है! 'पुत्र-प्राप्ति नहीं होगी,' यह बात मान भी लूँ... पर मेरे गुजरात का राज्य कुमारपाल के हाथों में जाएगा...। इस बात को मैं सह नहीं सकता! यह बात मेरे कलेजे को टुकड़े-टुकड़े कर रही हैं...। मैं किसी भी हालत में उसे राजा नहीं होने दूँगा! वह जिन्दा रहेगा तो राजा बनेगा ना? मैं उसकी हत्या करवा दूँगा...। उसे जिन्दा नहीं छोड़ूँगा...। फिर वह राजा बनेगा कैसे?' सिद्धराज की आवाज में गुस्सा और तिरस्कार की फूँफकार थी।

रानी ने राजा का हाथ अपने हाथ में लिया और अत्यंत मुलायम शब्दों में कहा :

'शान्त हो जाइये... स्वामिन्! जो होनी है उसे कौन टाल सकता है? हमें अब बाकी बची जिन्दगी शांति से जीनी चाहिए!'

❖ ❖ ❖

९. कुमारपाल का जन्म

चौलुक्य वंश के राजाओं में 'मूलराज' नामका एक पराक्रमी राजा हुआ था। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र चामुंडराज गुजरात का राजा हुआ था।

चामुंडराज के बाद गुजरात के सिंहासन पर दुर्लभराज राजा बनकर आया। दुर्लभराज प्रजा में अत्यधिक प्रिय था...। वह अपने निष्पक्ष न्याय एवं समुचित राज्य व्यवस्था के कारण सब का आदरणीय बना था। दुर्लभराज के बाद उसका पराक्रमी पुत्र भीमदेव राजा हुआ। राजा भोज को भी भूल जाएँ वैसा वह दानेश्वरी था।

राजा भीमदेव को दो रानियाँ थी। दोनों रानियों ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया था। बड़ा पुत्र था क्षेमराज और छोटा पुत्र था कर्ण।

भीमदेव ने अपना राज्य कर्ण को दिया और बड़े बेटे क्षेमराज को 'दधिस्थली' का राज्य दिया। क्षेमराज को देवप्रसाद नाम का पुत्र था। देवप्रसाद भीमदेव का बड़ा लाडला था।

देवप्रसाद को त्रिभुवनपाल नाम का पराक्रमी पुत्र था। राजा कर्ण ने अपना राज्य अपने बेटे सिद्धराज को सौंपते हुए कहा था 'तू देवप्रसाद का पूरा ध्यान रखना।' इसी तरह देवप्रसाद ने अपनी मृत्यु के वख्त सिद्धराज को कहा थाः

'त्रिभुवनपाल का ध्यान रखना।'

राजा सिद्धराज अपने भतीजे त्रिभुवनपाल को अपना भाई समान मानकर उसे गौरव देता था। उसके मान-सम्मान का ख्याल रखता था।

त्रिभुवनपाल भी महान पराक्रमी पुरुष थे। वे अपने नगर दधिस्थली में रहकर प्रजा का अच्छा पालन करते थे। प्रजा में वे काफी लोकप्रिय थे। जिस तरह मानसरोवर में राजहंस प्रसन्न मन से तैरते रहते हैं... वैसे ही त्रिभुवनपाल के मानसरोवर में धर्मरुपी हंस तैरते रहते थे।

त्रिभुवनपाल की पत्नी का नाम था काश्मीरा देवी। वह गुणों की मूर्ति थी। अद्‌भुत रूपवती थी। रुप और गुण के समन्वय ने काश्मीरा देवी के व्यक्तित्व को सर्वप्रिय बनाया था।

उस काश्मीरा देवी के गर्भ में एक उत्तम जीव आया। काश्मीरा देवी के मन में कई तरह के शुभ मनोरथ पैदा होने लगे।

- मैं समग्र पृथ्वी का रक्षण करूँ!
- मैं दुनिया के तमाम प्राणियों को अभयदान दूँ!
- मैं सभी मनुष्यों को व्यसनों के चंगुल से मुक्त करूँ!
- साधु पुरुषों को भावपूर्वक दान दूँ!
- मैं सब गरीबों की गरीबी दूर कर दूँ!
- मैं परमात्मा के नये मंदिरों का निर्माण करूँ!

नौ महीने पूरे हुए। काश्मीरा देवी ने एक सुन्दर-तन्दुरूस्त पुत्र को जन्म दिया। उसी समय आकाश में देववाणी हुई।

'यह बालक विशाल राज्य प्राप्त करेगा और उस राज्य में धर्म का साम्राज्य स्थापित करेगा।'

नवजात शिशु सौम्य था। सुन्दर था। सब को प्रिय लगे वैसा मोहक था। उसका नाम 'कुमारपाल' रखा गया।

त्रिभुवनपाल ने सोचा कि 'पुत्र यदि अविनीत हो तो आग की भाँति कुल को जला डालता है। परन्तु यदि विनीत और कलायुक्त है तो शंकर की जटा में रहे हुए चन्द्र की भाँति वह कुलदीपक होता है। इसलिए मुझे कुमारपाल को अच्छी शिक्षा देनी चाहिए।

- कुमारपाल को व्यावहारिक शिक्षा दी गई।
- साथ ही साथ युद्ध-कला सिखाई गई।
- माता ने पुत्र को गुणवान बनाने के लिए पूरी सजगता रखी।

उस पुत्र में मेरु पर्वत का स्थैर्य गुण आया। बृहस्पति का बुद्धि गुण आया। महासागर का गांभीर्य गुण आया। चन्द्र का सौम्यता गुण उतरा। सूर्य का प्रताप उसके व्यक्तित्व में झलकने लगा। कामदेव का सौभाग्य और विष्णु का प्रभाव कुमारपाल में उभरने लगा।

जब कुमारपाल युवावस्था में आया तब माता-पिता ने पुत्र के लिये सुयोग्य कन्या पसंद की। उसका नाम था भोपलदेवी। भोपलदेवी के साथ कुमार की शादी हुई। भोपलदेवी ने अपने रूप और गुणों से कुमार का दिल जीत लिया।

त्रिभुवनपाल के संबंध, राजा सिद्धराज के साथ अच्छे थे। अक्सर किसी न किसी प्रसंग पर त्रिभुवनपाल पाटन आते-जाते रहते थे। वैसे सिद्धराज भी सौराष्ट्र में आता तब दधिस्थली में त्रिभुवनपाल की मेहमाननवाजी के लिए चला आता।

युवक कुमारपाल भी दो-चार बार पाटन जा आया था। एकबार कुमारपाल पाटन में था तब उसने आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजी की काफी प्रशंसा सुनी थी।

'महाराजा सिद्धराज भी हेमचन्द्रसूरिजी के अनन्य भक्त हैं। सिद्धराज की विनति से हेमचन्द्रसूरिजी ने संस्कृत भाषा का बड़ा व्याकरण रचा है। राजा ने गुरुदेव के साथ तीर्थयात्राएँ भी की है।'

यह सब सुनकर कुमारपाल के मन में भी गुरुदेव के दर्शन करने की इच्छा जन्मी।

कुमारपाल गुरुदेव के उपाश्रय में पहुँचा। दोनों हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर उसने गुरुदेव को वंदना की। अपना संक्षिप्त परिचय दिया और विनयपूर्वक उनके चरणों में बैठ गया।

गुरुदेव ने युवक को 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद दिया। कुमार ने कहा :

'गुरुदेव, आप इजाजत दें तो एक सवाल पूछूँ?'

'गुरुदेव ने कहा : 'बड़ी खुशी से जो भी पूछना हो... तू पूछ सकता है।'

'गुरुदेव, इस सृष्टि में विविध स्वभाववाले आदमी रहते हैं। उनमें अलग-अलग तरह के अनेक गुण दिखायी देते हैं! मैं यह जानना चाहता हूँ कि सभी गुणों में श्रेष्ठ गुण कौन सा है?'

गुरुदेव के चेहरे पर स्मित उभर आया। उन्हें प्रश्न अच्छा लगा। उन्होंने कहा : 'कुमार, सभी गुणों में श्रेष्ठ गुण है 'सत्त्व!' सब कुछ इस सत्त्व में निहित है : 'सर्वं सत्त्वे प्रतिष्ठितम्'। जिस आदमी में सत्त्व है... उसमें अन्य सभी गुण अपने आप आ जाते हैं।'

'गुरुदेव, यह सत्त्वगुण की बात मुझे विस्तार से समझाने की कृपा कीजिए ना!'

गुरुदेव ने कहा : 'वत्स, मैं तुझे विस्तार से समझाता हूँ।'

- सत्त्वशील आदमी दुःख में धर्म का त्याग नहीं करता है।

- सत्त्वशील व्यक्ति ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा का दृढ़ता से पालन करता है।

- सत्त्वशील पुरुष दुःखों से घिर जाने पर भी नाहिम्मत नहीं होता है और न ही निराश होता है!

- सत्त्वशील आदमी के लिए कोई भी कार्य अशक्य नहीं है।

- सत्त्वशील मनुष्य पर उपकार करने के लिए समुद्र में कूदने से डरता

नहीं कि आकाश में छलांग लगाने से हिचकता नहीं है! आवश्यकता होने पर धधकती आग में भी कूद जाए! और जहर का प्याला भी पी जाए!

- सत्त्वशील मनुष्य जरुरत पड़ने पर अपना सर्वस्व होड़ में रखने से झिझकता नहीं है!

- सत्त्वशील आदमी कभी भी 'अरर'... 'हाय...हाय...' ऐसे डरपोक शब्दों का सहारा नहीं लेता है!

- सत्त्वशील मनुष्य राजा-प्रजा की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है, समय आने पर अपने आपका बलिदान भी दे देता है!

जैसे कि कुमारपाल को उसके भावी जीवन की कठिनाइयों के लिए आचार्यदेव प्रतीकात्मक रूप से निर्देश दे रहे थे!

'देखना, कुमार, तेरे सिर पर संकटों के बादल मँडराने वाले हैं, आफतों की आँधी से तुझे गुजरना है... उस वक्त तू अपने अपूर्व सत्त्व का परिचय देना। हिम्मत मत हारना! हौसला गँवाना मत!

आचार्यदेव से कुमारपाल को समाधान प्राप्त हुआ। उसे आचार्यदेव अच्छे लगने लगे।

वह वहाँ से खड़े होकर गुरुदेव को प्रणाम करके उपाश्रय के बाहर निकला और अपने गंतव्य की ओर लौट गया।

हेमचन्द्रसूरिजी के साथ कुमारपाल की पहली मुलाकात से कुमारपाल के दिल में खुशी की महक छाने लगी थी।

हेमचन्द्रसूरिजी को खयाल आ ही गया था कि कुमारपाल, सिद्धराज की मृत्यु के पश्चात् गुजरात का राजा बने इस बात से सिद्धराज सख्त नाराज है! और वह कुमारपाल को मारने के लिए हर संभव कोशिश करेगा।

कुमारपाल के जाने के पश्चात् आचार्यदेव गहरे विचार में डूब गये! 'देवी अम्बिका द्वारा किया हुआ भविष्य कथन मिथ्या होगा नहीं!' यह बात आचार्यदेव स्पष्ट तौर पर मानते थे। इसलिए 'सिद्धराज लाख उपाय करे... हर एक कोशिश करे...फिर भी कुमारपाल के प्राणों को वह हानि नहीं पहुँचा सकता' इस बात को लेकर वे एकदम निश्चिंत थे।

बुढ़ापे में भी सिद्धराज को जरा भी शांति नहीं थी। सुकुन नहीं था।

गुजरात के राजसिंहासन पर कुमारपाल किसी भी हालत में नहीं आना

चाहिए, यह उसका निर्णय था। फिर भी मन की गहराईयों में देवी अम्बिका की भविष्यवाणी ने अफरातफरी मचा रखी थी!

सिद्धराज ने कुमारपाल की हत्या करने के लिए... उसे जिन्दा या मरा हुआ पकड़ने के लिए अपना जासूसी तंत्र एवं चुनंदे सैनिकों के दस्ते तैयार कर दिये थे।

कुमारपाल को सिद्धराज के मनसूबे का पता लग गया था। वह भी सावधान हो गया था। पर उसके लिए सवाल बड़ा यह था कि वह अकेला निहत्था था। जबकि उसके पीछे... उसके चौतरफ सैनिकों का जाल बिछ गया था।

❖ ❖ ❖

१०. गुरुदेव ने जान बचायी!

कभी खाने को मिलता है...कभी भूखा रहना पड़ता है... कभी पानी पीने को मिलता है... कभी प्यासा ही भटकना पड़ता है... कभी सोने को आसरा मिलता है, तो कभी वह भी नसीब नहीं होता!

इस तरह भटकता हुआ कुमारपाल एक दिन खंभात के करीब पहुँच जाता है। सिद्धराज के सैनिकों से सतत बचता हुआ कुमारपाल खंभात के दरवाजे में प्रवेश करता है। छुपता-छुपाता वह धीरे-धीरे राजमार्ग पर चला जा रहा है। और एक भव्य जिनमंदिर के सामने चबूतरे पर आराम करने के लिए बैठता है!

वहाँ उसे मालूम हुआ कि 'आचार्यदेव श्री हेमचन्द्रसूरिजी यहीं पर किसी उपाश्रय में रुके हुए हैं।' वह पूछता हुआ उपाश्रय में पहुँच गया।

जब कुमारपाल उपाश्रय में पहुँचा तब वहाँ पर गुरुदेव के पास कोई स्त्री-पुरुष नहीं थे। कुमारपाल आश्वस्त हुआ। उपाश्रय में प्रवेश करके उसने आचार्यदेव को वंदना की। आचार्यदेव ने कुमारपाल को पहचान लिया। 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद दिया। कुमारपाल ने कहा :

'गुरुदेव, आप ज्ञानी हैं, भूत-भावि और वर्तमान-तीनों काल के ज्ञाता हैं! प्रभु! राजा के घर में जन्म लेने पर भी आज मैं दर-दर भटक रहा हूँ। जंगलों की खाक् छान रहा हूँ। आप दयालु हैं... कृपालु हैं...मुझे यह बताइये कि इन असह्य दुःखों का अंत कब आएगा? मेरे प्रारब्ध में सुख नाम की चीज है या नहीं? मेरे जीवन के सफर में सुख नाम का इलाका आएगा या नहीं!'

आचार्यदेव ध्यानस्थ हुए। उन्हें देवी अम्बिका के शब्द याद आये। उन्होंने आँखें खोलीं। कुमारपाल के सामने देखा। इतने में उपाश्रय में महामंत्री उदयन ने प्रवेश किया। आचार्यदेव मौन रहे। महामंत्री ने वंदना की और गुरुदेव के पास बैठे। गुरुदेव ने कुमारपाल से कहा :

'वत्स, तुझे अल्प समय के बाद राज्य प्राप्त होगा। तू इस गुजरात का राजा होगा।'

कुमार इस बात पर हँस पड़ा। उसने कहा :

'महात्मन्, अभी तो मेरी दशा एक भिखारी से भी ज्यादा बदतर है...

जंगलों में छुपता-छुपाता भटक रहा हूँ... कभी-कभी तो तीन-तीन, चार-चार दिन तक खाना नसीब नहीं होता! ऐसी बदकिस्मती का शिकार मैं क्या राजा होऊँगा? नहीं... यह असंभव है...!!'

'कुमार, तेरी बात सही है... ऐसे हालात में राजा होने की मेरी बात तुझे तीखे मजाक के अलावा कुछ नहीं लगेगी। पर मेरे ज्ञान में तेरा भविष्य काफी उज्ज्वल है!'

कुमार ने सोचा : 'ये योगी पुरुष हैं... महाज्ञानी हैं... इनका कथन झूठा तो नहीं हो सकता... फिर भी इनसे निश्चित समय पूछ लूँ... और यदि ये बता दे तो कुछ हिम्मत बनेगी... कुछ हौसला बढ़ेगा!'

उसने गुरुदेव से पूछ लिया :

'योगीराज, क्या आप कह सकते हैं - किस साल में, किस महीने में और कौन से दिन मैं राजा बनूँगा?'

'गुरुदेव तो ज्ञानी थे। योगसिद्ध पुरुष थे। उन्होंने भविष्यवाणी करते हुए कहा :

'विक्रम संवत् ११९९, माघसर वद चौथ के दिन तुझे राजगद्दी मिलेगी। यह मेरा सिद्धवचन है। यदि मेरा यह भविष्य कथन गलत सिद्ध होगा तो मैं इस ज्योतिष शास्त्र का त्याग कर दूँगा!'

उन्होंने अपने शिष्य के पास दो कागज पर यह भविष्य कथन लिखवाया। एक कागज कुमारपाल को दिया और दूसरा कागज महामंत्री उदयन को दिया।

महर्षि हेमचन्द्रसूरिजी का इतना विश्वासभरा चमत्कारिक ज्ञान देखकर आनन्द और आश्चर्य से कुमारपाल नाच उठा। अपने सारे दुःख वह भूल गया। दोनों हाथ जोड़कर सिर गुरुदेव के चरणों में रख कर वह गद्गद् स्वर में बोला :

'गुरुदेव, आपका यह भविष्यकथन यदि सच होगा तो यह राज्य मैं आप ही को समर्पण कर दूँगा। आप राजाधिराज बनेंगे... मैं आपका चरण सेवक होकर रहूँगा।'

आचार्यदेव के चेहरे पर स्मित की रेखाएँ उभरी... उन्होंने वत्सलता से नम्र शब्दों में कहा :

'वत्स, जैन साधु राज्य लेते भी नहीं और कभी राजा बनते भी नहीं। हम तो त्यागी हैं। परन्तु कुमार जब तू राजा हो तब श्री जैन धर्म का देश और दुनिया में प्रचार-प्रसार करना। अहिंसा धर्म का पालन घर-घर में करवाना।'

कुमारपाल ने प्रतिज्ञा की : 'मैं जब राजा बनूँगा तब आपकी आज्ञा का सहर्ष पालन करूँगा।'

इसके बाद आचार्यदेव महामंत्री उदयन को पास के कमरे में ले गये और उनसे कहा :

'महामंत्री, तुमने सारी बात शांति से सुनी है...। इस युवक के सिर पर इन दिनों मौत साया बनकर मँडरा रही है... यह बात तुम्हें मालूम है। तुम्हें उसका सहायक होना है। उसे अपने घर पर ले जाओ। उसका सुन्दर अतिथि सत्कार करके उसे सहायता करना... यह युवक भविष्य में जैन धर्म को पूरे देश में फैलायेगा। असंख्य सत्कार्य इसके हाथों होनेवाले हैं। इसे सहायता करना हमारा कर्तव्य है!

तुम्हें इसे अपनी हवेली में गुप्तरूप से रखना है। किसी को हवा तक न लगे इसकी सावधानी रखनी होगी।

उदयन मंत्री चुस्त जैन थे। राजा सिद्धराज ने उन्हें खंभात और उसके आसपास के इलाके का कार्यभार सौंपा हुआ था।

उदयन मंत्री कुशल... राजनीतिज्ञ और सक्षम राज्य संचालक थे। वे आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजी के प्रति बहुत लगाव रखते थे। उन्हें गहरी आस्था थी... श्रद्धा थी आचार्यश्री के प्रति! आचार्यश्री की आज्ञा के मुताबिक वे कुमारपाल को अपनी हवेली पर ले गये।

कई महीनों बाद कुमारपाल ने स्नान किया। स्वच्छ और सादे वस्त्र पहने। पेटभर के स्वादिष्ट भोजन किया और एकदम आराम से बारह घंटे की नींद निकाली।

कुछ दिन इस तरह बीत गये... इधर राजा सिद्धराज को भनक लग गई कि 'कुमारपाल खंभात में कहीं छुपा हुआ है!' तुरन्त उसने सैनिकों की एक टुकड़ी को बुलाया और कहा : 'तुम खंभात पहुँचो और कुमारपाल को कैद करके उसे मौत के घाट उतार दो!'

उदयन मंत्री को अपने गुप्त सूत्रों से इस बात का पता लग गया। उन्होंने कुमारपाल को सावधान कर दिया :

'अब आप यहाँ पर सलामत नहीं रह सकेंगे। अच्छा होगा आप गुरुदेव के पास पधार जाएँ... वे ही आपकी रक्षा कर सकेंगे।'

कुमारपाल रात के समय उपाश्रय में आया और गुरुदेव के चरणों में सारी हकीकत बयान की एवं आश्रय माँगा।

आचार्यदेव का चित्त द्रवित हो उठा। वे सोचने लगे :

'राजा सिद्धराज को मेरे पर भरोसा है... विश्वास है... यदि इस युवक को मैं रक्षण देता हूँ तो राजा का द्रोह होगा... और यदि रक्षण नहीं देता हूँ तो उसकी हत्या हो जाएगी! नहीं... कुछ भी हो... मुझे शरण में आये हुए इसको बचाना ही होगा। मेरी जान जाए तो जाए... पर कुमार की सुरक्षा करना मेरा कर्तव्य है। यह भविष्य में जिनशासन का महान प्रभावक राजा होनेवाला है!'

यों सोचकर मन ही मन आचार्य श्री ने कुछ निर्णय किया और कुमार से कहा :

'तू मेरे पीछे-पीछे चला आ!' वे उपाश्रय के एक कमरे में गये। कुमार उनके पीछे गया। कमरे में जाकर उन्होंने दरवाजा भीतर से बंद किया। उन्होंने एक तहखाने का द्वार खोला। कुमार को कहा : 'तू इस भूमिगृह में...तहखाने में उतर जा। बिलकुल आवाज़ मत करना।'

कुमार उत्तर गया तहखाने में। आचार्यदेव ने भूमिगृह का दरवाजा बंद किया और इस पर किताबों का-ग्रन्थों का इस तरह ढेर लगा दिया कि किसी को अंदाजा भी न आ पाये कि यहाँ पर तलधर है!

जितने हिस्से में भूमिगृह था... उस सब जगह पर ग्रन्थों को जमा दिये। एकदम व्यवस्थित और पंक्तिबद्ध! बीच-बीच में ग्रन्थों को बाँधने के कपड़े के टुकड़े भी दबा दिये।

सब कुछ सुव्यवस्थित ढंग से जमा कर, कमरा बंद करके, आचार्यदेव अपनी जगह पर आकर शांति से बैठ गये।

एकाध घंटे बाद पाटन से आई हुई सैनिकों की टुकड़ी कुमारपाल के कदम सूंघती हुई उपाश्रय के द्वार पर आ पहुँची। टुकड़ी का सरदार नया था। वह आचार्यदेव को जानता नहीं था। उसने आते ही आचार्यदेव के पास जाकर बड़े ही रूखे शब्दों में कहा :

'स्वामीजी, हम लोग महाराजा की आज्ञा से पाटन से यहाँ पर आये हैं। कुमारपाल तुम्हारे इस आश्रम में आया है... उसे हमें सुपुर्द कर दो...'

आचार्यदेव ने कहा :

'यहाँ कहाँ कुमारपाल है भाई? फिर भी यदि राजा की आज्ञा है तो तुम जहाँ चाहो वहाँ तलाश कर सकते हो!'

सैनिकों ने उपाश्रय देखा। एक-एक कमरा देख लिया... ऊपर देखा... नीचे देखा... आगे देखा... पीछे देखा... इधर देखा... उधर देखा... पर कहीं कुमारपाल का पता नहीं लगा। वे निराश हो गये, साथ ही मेहनत निष्फल हो जाने से क्रुद्ध भी हुए। वे वहाँ से चल दिये।

कुछ समय गुजरा। आचार्यदेव ने उपाश्रय के द्वार बन्द करवाये... कमरे में गये। पुस्तकों को दूर करवा कर तलघर में से कुमारपाल को बाहर निकाला। बाहर निकलते ही कुमारपाल आचार्यदेव के चरणों में गिर गया। उसका गला अवरुद्ध हुआ जा रहा था।

'गुरुदेव, आपने मेरी जान बचाई... आपने मुझ पर महान उपकार किया!'

'कुमार, उन दुष्ट सैनिकों की बातें सुनी थी ना? कितने जोर-जोर से चिल्ला रहे थे?'

'गुरुदेव, मैंने उनकी बातें सुनी थी और आपका समयोचित जवाब भी। भगवान्, आपको मेरी खातिर असत्य बोलना पड़ा ना?

'कुमार... एक जीव की रक्षा के लिए बोला गया असत्य वचन भी असत्य नहीं होकर सत्य ही कहा जायेगा। मुझे तो हर कीमत पर तेरी रक्षा करनी थी...ताकि भविष्य में तू असंख्य जीवों की रक्षा कर सके!'

'भगवंत, एक बात मेरी समझ में नहीं आ रही है कि इतने बुढ़ापे में राजा सिद्धराज को यह क्या सूझा? उसे किस बात की कमी है? इतना विशाल राज्य है... और भरपूर धन भंडार है...!

खैर, उसके दिमाग में मेरे लिए तिरस्कार है... नफरत है... यह भी मेरे ही किसी दुर्भाग्य का परिणाम है!

महात्मन्, आपने बड़े मौके पर, आपकी जिन्दगी की परवाह किये बगैर मुझे बचा लिया! मैं आपका कितना उपकार मानूँ? मेरे प्राणों की रक्षा करके आपने मुझ पर महान उपकार किया है! इस उपकार का बदला मैं न जाने कब चुका सकूँगा? आपका जैनधर्म दयामय है... यह बात आज तक मैंने सुन रखी थी... पर आज इसका प्रत्यक्ष अनुभव हो गया!

'महात्मा, खुद को किसी भी तरह की तकलीफ नहीं होती हो फिर भी औरों पर उपकार करनेवाले गिनती के लोग होते हैं... ऐसे में... इतने नाजुक मौके पर खुद अपने आपको खतरे में डालकर भला, कौन परोपकार करेगा? आप एक ही ऐसे वीर पुरुष निकले।'

'गुरुदेव, आपके उत्तम गुणों के कारण ही मैं आज दिन तक आपके प्रति आदर भक्तिवाला था... पर आज तो आपका मैं दास हो चुका हूँ! आज आपने मुझे जीवनदान दिया है... यह मेरा परम सौभाग्य है!'

आचार्यदेव ने उदयन मंत्री से कुमारपाल को आवश्यक सोन-मुहरें दिलवाई और उसे खंभात से दूर-दूर चले जाने की सलाह दी।

रात के निबिड़ अंधकार में कुमारपाल अदृश्य हो गया।

❖ ❖ ❖

११. कुमारपाल का राज्याभिषेक

आचार्यदेव श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी ने कुमारपाल को राज्यप्राप्ति की जो तिथि बतलाई थी - वह उसे बराबर याद थी।

वि. सं. ११९९ के वर्ष का आरम्भ था। कुमारपाल अपनी पत्नी भोपलदेवी के साथ पाटन आये। कुमारपाल की बहन प्रेमलदेवी पाटन में ही रहती थी। कुमारपाल अपनी बहन के वहाँ पहुँचे। उनके बहनोई कृष्णदेव ने कुमारपाल का स्वागत किया।

कृष्णदेव ने कहा :

'कुमारपाल, तुम उचित समय पर आये हो। महाराजा सिद्धराज जयसिंह मृत्युशैय्या पर है। तुम्हारे ऊपर अब किसी प्रकार का भय नहीं है... इसलिए निश्चिंत होकर यहीं पर रहो।'

सातवें दिन राजा सिद्धराज की मृत्यु हुई। और मगसिर वद चौथ के दिन कुमारपाल को सर्वानुमति से राजा बनाया गया।

गुरुदेव के कहे हुए साल-महीने और तिथि के दिन कुमारपाल गुजरात के राजा बने।

❍ ❍ ❍

उस समय गुरुदेव कर्णावती नगरी में बिराजमान थे। उन्हें किसी मुसाफिर ने आकर कहा :

'त्रिभुवनपाल के पुत्र कुमारपाल का गुजरात के राजा के रूप में राज्याभिषेक हुआ है।'

गुरुदेव का मन हर्षित हुआ। उन्हें कुमारपाल के शब्द याद आये... 'मुझे राज्य मिलेगा तब मैं जैन धर्म का प्रचार करूँगा।'

'यह बात कुमार को याद है या नहीं?' यह जानने के लिए आचार्यदेव ने पाटन की ओर विहार किया।

गुजरात के महामंत्री उदयन को समाचार मिले कि आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजी पाटन में पधारे रहे हैं। उन्हें बहुत खुशी हुई। उदयन मंत्री को आचार्यदेव पर गहरी आस्था थी। जब हेमचन्द्राचार्य छोटे से चंगदेव थे... तब उदयन मंत्री

की गोद में खेले थे! उनकी दीक्षा के समय भी उदयन मंत्री ही मुख्य थे। कुमारपाल को सिद्धराज के सैनिकों से एकबार बचानेवाले भी वे थे। जब गुरुदेव ने कुमारपाल को राज्यप्राप्ति की भविष्यवाणी की थी... उस समय भी उदयन मंत्री उपस्थित थे... वह कागज, जिसपर भविष्यवाणी लिखी हुई थी... वह कागज भी उदयन मंत्री के पास सुरक्षित था।

उदयन मंत्री ने पाटन के जैन संघ को एकत्र करके कहा :

'हमारे महान उपकारी आचार्यदेव पाटन में पधार रहे हैं। उनका शानदार स्वागत करना है।'

सभी के हृदय आनन्द से नाच उठे।

आचार्यदेव का भव्य नगर प्रवेश हुआ।

उपाश्रय में पहुँचकर उन्होंने धर्मोपदेश दिया।

सभी लोग प्रसन्न होकर अपने-अपने घर लौट गये।

महामंत्री उदयन वहीं पर रुके। खड़े रहे।

आचार्यदेव ने उनसे एकान्त में पूछा :

'महामंत्री, मेरी भविष्यवाणी के मुताबिक कुमारपाल को राज्य की प्राप्ति हुई है... क्या वह अब मुझे याद करता है या नहीं?'

उदयन मंत्री ने कहा :

'गुरुदेव, राजा ने... उसके बुरे दिनों में...गर्दिश के दिनों में जिन-जिन ने उस पर उपकार किये थे... उन सब को बुलाकर उनकी उचित कद्र की है।

जिस भीमसिंह ने कुमार पर दया लाकर उसे झाड़-झंखर में छुपाकर, सिद्धराज के सैनिकों से रक्षा की थी... उस भीमसिंह को बुलाकर उसे अपना निजी अंगरक्षक नियुक्त किया है।

- जिस सेठ की पुत्रवधु देवश्री ने, तीन-तीन दिन के उपवास के बाद जब कुमारपाल बेहोश होकर जंगल के रास्ते पर गिर पड़ा था तब उसे प्रेम से खाना खिलाकर अपने रथ में बिठाया... उसे बुलाकर उसी के हाथ से राजतिलक करवाया। उसे अपनी धर्म की बहन मानी और एक पूरे गाँव का राज्य उसने बहन को भेंट दिया है।

- जिस सज्जन कुंभार ने उसे ईटों के अलाव में छुपाकर उसके प्राण बचाये थे... उस सज्जन को राजा ने चित्रकुट का सामंत बनाया है!

- अपने मित्र वोसरि ब्राह्मण... जो भटकाव के दिनों में उसका साथी रहा था... उसे लाट देश का राजा नियुक्त किया है।

यह सब तो उसने किया है... पर मेरे समक्ष कभी आपको याद नहीं किया... आपकी कोई बात नहीं निकाली!'

आचार्यदेव ने दो पल आँखें मूँद ली और फिर आँखें खोलकर उन्होंने मंत्री से कहा :

'महामंत्री, तुम आज राजा के पास जाकर उसे अकेले में कहना कि 'रानी के महल पर आज वह सोने के लिए न जाए!'

सबेरे कोई चमत्कार हो और राजा तुमसे पूछे कि 'तुमने मुझे रानी के महल में सोने के लिए मनाही की... वह किसके कहने से?' तब तुम मेरा नाम उसे देना।'

महामंत्री ने हाँ कही। उन्हें लगा कि 'अवश्य कल सबेरे राजपरिवार में कोई चमत्कार होगा ही!'

वे सीधे ही राजमहल पर गये।

महाराजा कुमारपाल से मिले। उनके कानों में गुप्त रूप से कहा :

'मुझे एक अति महत्वपूर्ण बात आपसे अभी - इसी वक्त करनी है!'

राजा ने वहाँ पर बैठे हुए अन्य राजपुरुषों को इशारे से बाहर भेज दिया।

महामंत्री ने कहा :

'आज आपको रानी के महल में सोने के लिए नहीं जाना है।'

राजा ने बिना किसी तर्क-वितर्क के महामंत्री की बात मान ली। चूँकि राजा महामंत्री को अपने पितातुल्य समझता था।

महामंत्री अपने निवास पर गये।

राजा कुमारपाल रानी के महल पर सोने के लिए नहीं गये।

रात्रि में उस महल पर बिजली गिरी। महल जल गया और साथ ही रानी भी जलकर राख हो गयी।

सबेरे तड़के ही जब राजा को समाचार मिले तब उसे बहुत आश्चर्य हुआ।

महामंत्री को भी सबेरे-सबेरे समाचार पहुँच गये थे। उनके विस्मय की भी सीमा नहीं थी। वे राजा के पास गये। राजा के चेहरे पर रानी के जल मरने की व्यथा थी... तो खुद के बच जाने का आश्वासन भी था। राजा ने पूछा :

'महामंत्री, इतनी सही और सटीक भविष्यवाणी किसने की?'

'क्या करेंगे आप वह जानकर?'

'क्यों? मेरे प्राणों को बचानेवाले उपकारी को भी मैं नहीं जान सकता?'

यह भविष्यवाणी करनेवाले वे ही महापुरुष हैं... जिन्होंने एक दिन मेरी उपस्थिति में आपको कब राज्य की प्राप्ति होगी... इसकी भविष्यवाणी की थी। और वह भविष्यवाणी अक्षरशः सही सिद्ध हुई। याद है आपको? आप जब खंभात में आये थे... कष्टों और कठिनाइयों ने आपको थका डाला था... तब गुरुदेव ने एक कागज पर आपको राज्य प्राप्ति का वर्ष-महीना और दिन लिखकर दिया था और दूसरा कागज मुझे लिखकर दिया था?

याद कीजिए, महाराजा, उनके उपाश्रय के तलघर में उन्होंने आपको अपनी जान की परवाह किये बगैर भी छुपा के संरक्षण दिया था? सिद्धराज के सैनिक आपकी तलाश में वहाँ पर आ धमके थे? यह सब याद आ रहा है?'

कुमारपाल सहसा खड़े हो गये। वे बोले : 'महामंत्री, वे उपकारी गुरुदेव तो हेमचन्द्रसूरीश्वरजी हैं। क्या वे पाटन में पधारे हैं?' कुमारपाल ने महामंत्री के दोनों कंधे पकड़कर उन्हें झिंझोड़ सा दिया।

'जी, हाँ!' महामंत्री ने अपने जेब में रखा हुआ भविष्यवाणी वाला वह कागज निकाला और राजा को बताया!

'महामंत्री, मुझे उन महापुरुष के दर्शन करने हैं!'

'आप प्राभातिक कार्यों से निवृत्त हो... रानी के अंतिम संस्कार भी करने होंगे। राज्य में शोक की घोषणा करनी होगी। आप राजसभा में पधारेंगे तब मैं वहाँ पर गुरुदेव को साथ लेकर पहुँचता हूँ।'

महामंत्री अपने घर पर गये। स्नान वगैरह कर के स्वच्छ वस्त्र पहने और गुरुदेव के पास गये। राजा के साथ हुई बात गुरुदेव से निवेदित की और राजसभा में पधारने की विनती की।

आचार्यदेव महामंत्री के साथ राजसभा के द्वार पर आये। राजा कुमारपाल मंत्रीवर्ग के साथ वहीं पर खड़े थे।

मेघ को देखकर मयूर नाच उठे!

चन्द्र को निहारकर चकोर झूम उठे!

वैसे गुरुदेव को देखकर राजा का मन भर आया।

राजा ने गुरुदेव को अति हर्ष के साथ प्रणाम किये। उन्हें सम्मानपूर्वक राजसभा में लाकर, अपने सुवर्णासन पर आसीन किया।

गुरुदेव ने राजा को आशीर्वाद दिया :

'राजन्, ज्ञानरूप, अगोचर, अतुलनीय और अप्रतिम तेज तेरे मोह को प्रशांत करनेवाला हो!'

राजा ने आशीर्वाद ग्रहण किये। अपने अपराध के बोझ से शरम महसूस करता हुआ राजा बोला :

'भगवन्, मैं कृतघ्न हूँ। मैं आपको मेरा मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहा। खंभात में जब सैनिक मुझे पकड़ने के लिए आये तब आप ही ने मेरी रक्षा की थी... अपने प्राणों की परवाह किये बगैर! आप ही ने मुझे घोर निराशा में से खींच कर बाहर निकाला था... और लिखकर दिया था कि इस दिन... इस वार को मेरा राज्याभिषेक होगा।

आपके कथनानुसार जब मुझे राज्य प्राप्ति हुई तब आपके उपकारों का बदला चुकाने की बात तो दूर रही... मैंने आपको याद भी नहीं किया! पहले के आपके अनेक उपकारों का ऋण अभी मैंने चुकाया नहीं है कि आपने एक और महान उपकार मुझ पर किया। प्राणदान देकर मुझे उपकारों के भारी पर्वत तले दबा दिया है! मेरे ऊपर आपका ऋण बढ़ता ही जा रहा है... न जाने कब मैं आप के ऋण से मुक्त हो पाऊँगा?

भगवंत्! उपकार करना... यही आपका स्वभाव है। अन्यथा मुझ जैसे कृतघ्नी आदमी पर आज फिर प्राणदान देने का उपकार आप कैसे करते?

कृतज्ञ आदमी से ऊँचा कोई आदमी नहीं।

कृतघ्न आदमी से नीच कोई आदमी नहीं!

इसीलिए तो दुनिया में कृतज्ञ आदमी की सब प्रशंसा करते हैं और कृतघ्न को सब बुरा कहते हैं।

ओ प्रभु! आप कृतज्ञता की चोटी पर बिराजमान हो जब कि मैं कृतघ्नता की खाई में गिर पड़ा हूँ।

आप क्षमाधन हैं! आप मेरे तमाम अपराधों को क्षमा करें। मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप यह पूरा राज्य स्वीकार कीजिए... सारी राज्यसंपत्ति का उपभोग करें... और मुझे कृतार्थ करें!'

बोलते-बोलते राजा कुमारपाल की आँखें गीली हो उठीं। उनका हृदय भर आया।

आचार्यदेव ने कहा :

'कुमारपाल! तू क्यों इतना व्यथित हो रहा है? तू कृतज्ञ ही है! कृतज्ञों में श्रेष्ठ है। उपकारों का बदला चुकाने का अवसर तो अब आ रहा है!

तू मुझे राज्य स्वीकार करने को कह रहा है... परन्तु तेरी अपूर्व भक्ति के सामने राज्य की क्या कीमत है? तेरी अनुपम भक्ति ही अमूल्य है!

और फिर राजन्! हम तो निर्मोही...निर्लोभी... और चारित्रवान् जैन साधु हैं। राज्य हो भी तो हम उसका त्याग कर सकते हैं... परन्तु स्वीकार नहीं कर सकते! यदि हम राज्य ग्रहण करें तो हमारा धर्म नष्ट हो जाए!

इसलिए यदि सचमुच तुझे उपकारों का बदला चुकाना ही है तो तू तेरा आत्महित कर। इसके लिए तू जिनेश्वर देव के धर्म को स्वीकार कर। श्रद्धापूर्वक स्वीकार कर। तूने इससे पूर्व मुझे वचन दिया हुआ है! तेरे उस वचन को निभा। उस वचन को यथार्थ करके दिखा। महापुरुषों के वचन मिथ्या नहीं होते हैं।'

आचार्यदेव का उपदेश सुनकर राजा ने कहा :

'ओ मेरे उपकारी गुरुदेव!

जैसा आप कहते हैं... कहेंगे, वैसा ही मैं करूँगा! आप ही के संपर्क में, सहवास में रहने की मेरी इच्छा है। आपके सत्संग में कुछ तो तत्त्वज्ञान अवश्य पा सकूँगा।

इस तरह आचार्यदेव और कुमारपाल के संबन्धों का जन्म हुआ और वह संबंध मृत्यु पर्यन्त बना रहा। कुछ उतार-चढ़ाव जरुर आये पर भीतरी रिश्ते का रंग कभी फीका नहीं पड़ा!

❖ ❖ ❖

१२. सोमनाथ महादेव प्रगट हुए

जैसे देवसभा में इन्द्र गौरव प्राप्त करता है...वैसे गुजरात की राजसभा में राजा कुमारपाल का रुतबा था।

राजसभा में सामन्तराजा, मंत्रीगण, सेनापति, राजपुरोहित सभी अपने-अपने आसन पर आसीन थे। गुरुदेव श्री हेमचन्द्रसूरिजी भी राजा के समीप ही ऊँचे काष्ठासन पर बिराजमान थे।

उस समय देवपत्तन से आये हुए सोमनाथ महादेव के पूजारियों ने राजसभा में प्रवेश किया। महाराजा को प्रणाम करके अपना परिचय दिया... और निवेदन किया :

'महाराजा, देवपत्तन में समुद्र के किनारे पर स्थित भगवान सोमनाथ का काष्ठमंदिर जीर्ण हो गया है। इस मंदिर का पुनर्निर्माण करना अति आवश्यक है। हमारी आपसे नम्र विनति है कि इस मंदिर के जीर्णोद्धार का पुण्य आप अर्जित करें एवं इस संसार से अपनी आत्मा का उद्धार करें। यह कार्य करने से देश और दुनिया में आपकी कीर्ति शाश्वत होकर स्थापित रहेगी। बरसों तक लोगों की जुबान पर आपकी यशगाथा गूँजती रहेगी।

राजा कुमारपाल को यह सत्कार्य अच्छा लगा। उन्होंने पूजारियों को आश्वासन दिया :

'तुमने मुझे इतना सुन्दर पुण्यकार्य बता कर मेरे ऊपर उपकार किया है। इस कार्य के लिए शक्य इतनी शीघ्रता की जाएगी।'

पूजारियों को कीमती वस्त्र-अलंकार देकर उनका सत्कार किया गया। उन्हें विदाई देकर राजा ने तुरन्त ही सोमनाथ महादेव के मंदिर के जीर्णोद्धार का कार्य पाँच अधिकारियों को सौंप दिया।

कुछ दिनों में ही सोमनाथ महादेव का समूचा मंदिर पाषाण का करने की योजना बनाकर कार्य प्रारंभ कर दिया गया।

कुमारपाल का मन उस कार्य में व्यस्त होने से वह प्रतिदिन मंदिर के निर्माण कार्य की जानकारी प्राप्त करता था। कार्य काफी मंद गति से चल रहा था।

एक दिन कुमारपाल ने गुरुदेव से पूछा :

'गुरुदेव... ऐसा कोई उपाय बतलाइये ताकि सोमनाथ महादेव का मंदिर शीघ्र ही तैयार हो जाए!

सब धर्मों के प्रति समभाव धारण करनेवाले अपने भक्त राजा कुमारपाल का प्रश्न सुनकर आचार्यदेव ने कहा :

'कुमारपाल, कोई बड़ा व्रत तुम्हें स्वीकार करना चाहिए। व्रत के पालन से पुण्य बढ़ता है और पुण्य बढ़ने से कार्य की पूर्णाहुति शीघ्र होती है... निर्विघ्न होती है!'

कुमारपाल ने कहा :

'मेरे योग्य जो भी व्रत आपको लगता हो, आप मुझे कहिए। मैं अवश्य आपके द्वारा प्रदत्त व्रत को ग्रहण करूँगा।'

गुरुदेव ने कहा :

'राजन्, मांसाहार छोड़ दीजिए और मद्यपान-शराब का त्याग कीजिए।

राजेश्वर... जो आदमी मांसाहार नहीं करता है... किसी जीव की हत्या नहीं करता है... वह आदमी सभी प्राणियों का मित्र है!

- पैसे लेकर मांस बेचनेवाले...

- मांस खानेवाले...

- जीवों को मारनेवाले,

- जीवों के वध की योजनाएँ बनानेवाले

ये सभी घातक हैं... हिंसक हैं... महापाप करनेवाले हैं। इसी तरह...

मदिरा बनानेवाले...

मदिरा पीनेवाले...

मदिरा बेचनेवाले...

मदिरा बनाने की योजना बनानेवाले...

ये सभी घोर पाप करनेवाले हैं। इस पाप के फलस्वरुप नरक के घोर दुःख प्राप्त होते हैं।

राजा ने दो प्रतिज्ञाएँ ग्रहण की :

जीवनपर्यंत मांसाहार नहीं करना।

जीवनपर्यंत मदिरापान नहीं करना।

गुरुदेव को संतोष हुआ। राजा भी आनंदित हुआ।

❍ ❍ ❍

सोमनाथ के मंदिर का कार्य जोर-शोर से चलने लगा। राजा पाटन से लाखों रुपये भेजने लगा।

दो साल में मंदिर का कार्य पूरा हो गया। कुमारपाल की खुशी समुद्र के ज्वार की भाँति उछलने लगी। राजा ने राजसभा में खुले मन से... जी भरकर आचार्यश्री हेमचन्द्रसूरिजी की प्रशंसा की। यह सुनकर राजपुरोहित इर्ष्या से जलने लगे। उसके मन में हेमचन्द्रसूरिजी के प्रति द्वेष था...नफरत थी। उसे डर था कि हेमचन्द्रसूरिजी के प्रभाव से राजा जैन धर्म का अनुयायी हो जायेगा तो? राजा ब्राह्मणधर्म का अनुयायी ही रहना चाहिए। परन्तु हेमचन्द्रसूरिजी के प्रभावी एवं प्रतापी व्यक्तित्व के सामने उसकी दाल गलती नहीं थी! वह मन में ही कुढ़कर रह जाता था।

पर आज उसे अपने दिल में घुलता जहर उगलने का मौका मिल गया। चूँकि राजसभा में हेमचन्द्रसूरिजी उपस्थित नहीं थे। वह खड़ा होकर यथा-तथा बकने लगा।

'महाराजा, यह जैनाचार्य विश्वसनीय नहीं है... यह महाधूर्त है... मीठी-मीठी बातें करके आपको लपेटना चाहता है... वास्तव में उसे आपके धर्म के प्रति द्वेष है... आदर नहीं है!

यदि आपको मेरी बात पर भरोसा नहीं होता हो तो आप उस हेमाचार्य को आपके साथ सोमनाथ की यात्रा करने के लिए कहें... वे आयेंगे नहीं... और सोमनाथ के दर्शन करेंगे नहीं। सोमनाथ को हाथ जोडेंगे नहीं!'

राजा ने कुछ अनमनेपन से कहा :

'ठीक है... मैं उन्हें सोमनाथ की यात्रा में साथ चलने के लिए निमन्त्रण दूँगा।'

राजसभा पूरी हो गई।

राजपुरोहित की बात से राजा का मन बेचैन हो उठा था। वे सीधे ही उपाश्रय में गुरुदेव के पास गये। गुरुदेव को वंदना करके कहा :

'गुरुदेव, सोमनाथ महादेव के मंदिर का कार्य पूरा हो गया है। मेरी इच्छा है कि मैं एक बार अब सोमनाथ की यात्रा करूँ... आप मेरे साथ यात्रा में पधारेंगे ना?

शीघ्र ही गुरुदेव ने कहा :

'राजन्, तीर्थयात्रा तो हमारा धर्म ही है। वही तो हमारा कर्तव्य है। तीर्थयात्रा के लिए हम साधुओं को प्रार्थना करने की आवश्यकता ही नहीं होती!'

राजा हर्षित हुआ। वह राजमहल में गया। उसने मन में निश्चय किया... कल राजसभा में उस पुरोहित को मुँह की खानी पड़ेगी!'

अगले दिन राजसभा का आयोजन हुआ।

राजा कुमारपाल राजसिंहासन पर आकर बैठे।

गुरुदेव भी राजसभा में पधार गये थे।

राजसभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। राजपुरोहित बार-बार राजा की ओर देख रहा था। राजा उसकी ओर देखना टाल रहा था।

राजसभा का कार्य पूरा हुआ। राजा ने खड़े होकर आचार्यदेव से प्रार्थना की :

'गुरुदेव, सोमनाथ का मंदिर नया बन गया है... मेरी इच्छा यात्रा करने की है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप भी यात्रा में साथ पधारिये।'

'अवश्य... अवश्य... राजन्! तीर्थयात्रा तो हमारा धर्म है... हम जरूर आयेंगे!'

राजा ने उस इर्ष्यालु पुरोहित की ओर तीक्ष्ण निगाहों से देखा... वह इतना सकपका गया था... कि नजर ऊँची करके देखने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी। वह पैरों से धरती को घिस रहा था। गुरुदेव समझ गये कि यह सारी आग इस पुरोहित की लगाई हुई है! उन्होंने राजा से कहा :

'हम कल ही सौराष्ट्र की ओर विहार करेंगे। शत्रुंजय-गिरनार की यात्रा करके देवपत्तन में तुम्हें मिल जाएंगे।

कुमारपाल ने कहा :

'गुरुदेव, यात्रा के लिए सुन्दर-सुविधा संपन्न रथ उपाश्रय में भिजवा दूँ?'

गुरुदेव मुस्कुरा उठे : 'राजेश्वर, हम साधु लोग हमेशा पैदल ही चलते हैं! हम वाहन में नहीं बैठ सकते। पदयात्रा ही हमारा आचार है।'

राजा बहुत आनंदित हुआ।

गुरुदेव ने शिष्य परिवार के साथ सौराष्ट्र की ओर विहार कर दिया। कुछ दिन बाद कुमारपाल ने भी देवपत्तन की ओर प्रयाण किया। उसे अति शीघ्र देवपत्तन पहुँचकर सोमनाथ महादेव के दर्शन करने थे।

राजा को पवनवेगी रथ में जाना था।

गुरुदेव पैदल चलकर जानेवाले थे।

राजा पहले पहुँच गया।

जैसे मयूर मेघ की बाट निहारता है... वैसे राजा गुरुदेव की राह देखने लगा।

गुरुदेव शत्रुंजय-गिरनार की यात्रा करके, देवपत्तन पहुँचे। कुमारपाल के दिल, में चन्द्र के दर्शन से सागर की लहरें उछले त्यों बल्लियों उछलने लगा।

राजा ने कहा :

'गुरुदेव, जैसे दुल्हा शादी का मुहूर्त बराबर ध्यान में रखता है, वैसे ही आपने यहाँ पर पहुँचने का समय सम्हाल लिया।

राजा गुरुदेव के साथ धूमधड़ाके से सोमनाथ के मंदिर पर पहुँचा। अपने द्वारा निर्मित देवविमान से मंदिर की अद्‌भुत शोभा देखकर राजा का मन हर्ष से छलक उठा। उसका शरीर रोमांचित हो उठा। आँखों में आँसु उभर आये।

सभी ने मंदिर में प्रवेश किया।

राजा के मन में एक बात घूम रही थी। 'जिनदेव के अनुयायी जिनेश्वर के अलावा किसी को नमस्कार नहीं करते!' इसलिए सहमते हुए उसने गुरुदेव से कहा :

'गुरुदेव, यदि आपको उचित लगे तो आपको भी महादेव के दर्शन करने चाहिए।'

'अरे, राजन्! यह क्या कहा तुमने? दर्शन करने के लिए तो इतना चलकर यहाँ पर आये हैं! अवश्य करेंगे दर्शन!'

गुरुदेव ने दर्शन करते हुए दोनों हाथ जोड़कर सिर झुकाया और स्तुति की :

'जिनके राग-द्वेष नष्ट हो चुके हैं... वैसे ब्रह्मा हो, विष्णु हो, या महादेव हो - चाहे किसी भी नाम में हो - मैं उन्हें वंदना करता हूँ!'

स्तुति सुनकर राजा का मन प्रसन्न हो उठा।

यात्रा के लिए उचित सभी क्रियाएँ पूजारियों ने संपन्न करवाई। राजा गुरुदेव के साथ महादेव के गर्भगृह तक आया। गर्भगृह के द्वार के पास खड़े रहकर उसने गुरुदेव से कहा :

'गुरुदेव, महादेव के समान कोई देव नहीं है... आपके जैसे महर्षि अन्य नहीं है और मेरे जैसा तत्त्व का अर्थी कोई दूसरा नहीं है। आज इस तीर्थ में त्रिवेणी संगम हुआ है! गुरुदेव, आज मुझे एक बात का निर्णय करना है कि 'ऐसा कौन सा धर्म है और ऐसे कौन से देव हैं... जो मुझे मोक्ष दिला सकते हैं! आप ही मुझे बताइये। उस देव का एकाग्र मन से ध्यान करके मुझे मेरी आत्मा को पवित्र बनाना है। आप जैसे गुरुदेव हो, फिर भी यदि तत्त्व का संदेह रहे यह, कुछ वैसा ही होगा जैसे कि सूरज की रोशनी में भी कोई चीज दिखाई ना दे!'

राजा की बात सुनकर गुरुदेव ने दो क्षण आँखें बंद की। कोई संकेत उन्हें मिला। आँखें खोलकर उन्होंने राजा के सामने देखा।

'राजन्, चलो...गर्भगृह के भीतर! मैं तुम्हें इन्ही देव के प्रत्यक्ष दर्शन करवा देता हूँ। ये महादेव स्वयं जो कहें... उस देव और धर्म की उपासना तुम करना! चूँकि देववाणी कभी असत्य नहीं होती!'

'क्या यह बात शक्य है?'

'हाँ... तुम खुद ही अनुभव कर लेना ना!'

अब मैं ध्यान करता हूँ। तुम इस धूपदाने में धूप डालते रहना। जब तक शंकर स्वयं प्रगट होकर तुम्हें मना न करे तब तक सुगन्धित धूप डालते रहना।' गर्भगृह बंद कर दिया गया।

आचार्यदेव ध्यान में लीन हो गये।

राजा धूपदाने में धूप डालने लगा।

पूरा गर्भगृह धूएँ के बादलों से भर गया। अंधेरा छा गया। दिये भी बुझ गये। इतने में आहिस्ता-आहिस्ता शंकर के लिंग में से प्रकाश की किरणें फूटने लगीं। प्रकाश बढ़ता चला... और उस रोशनी में से एक दिव्य आकृति प्रगट हुई।

राजा खुले नयन से उस दिव्य आकृति को देखने लगा।

सुवर्ण जैसी काया!

सिर पर जटा!

जटा में से बहती गंगा!... और ऊपर चन्द्रकला!

राजा ने उस आकृति को अंगूठे से जटा तक अपना हाथ लगा कर छुआ और निर्णय किया कि यह देवता ही है!

राजा ने जमीन पर पाँच अंग लगा कर प्रणाम किया और प्रार्थना की :

'ओ जगदीश... आपके दर्शन पाकर मेरी आँखें पावन हो गयी। चूँकि आपका ध्यान निरंतर करने वाले आत्मज्ञानी भी आपका दर्शन पाने के लिए सफल नहीं होते... फिर मुझ से अज्ञानी और पामर प्राणी की तो बिसात ही क्या? परन्तु मेरे परम उपकारी गुरुदेव के ध्यान से आपने मुझे दर्शन दिये हैं... मेरी आत्मा खुशी से उछल रही है।'

भगवान सोमनाथ का गंभीर ध्वनि मंदिर में गूँज उठा :

'कुमारपाल, मोक्ष देनेवाला धर्म यदि तू चाहता है तो इन साक्षात् परब्रह्म सदृश सूरीश्वरजी की सेवा कर। सर्वदेवों के अवताररूप सर्वशास्त्रों के पारगामी...तीन लोक के स्वरूप को जाननेवाले हेमचन्द्रसूरि की प्रत्येक आज्ञा का तूं निष्ठापूर्वक पालन करना। इससे तेरी तमाम मनोकामनाएँ फलीभूत होंगी।'

इतना कहकर शंकर स्वप्न की भाँति अदृश्य हो गये। राजा का आश्चर्य तो आकाश छू रहा था।

उसने गुरुदेव के सामने देखा : उसके तन-मन-नयन हर्ष से गद्‌गद् हो उठे थे। उसने कहा :

'ओ गुरुदेव! ईश्वर भी आपके वश में हैं। आप ही महेश्वर हो! मेरे विगत जन्मों की पुण्यराशि आज एकत्र हो गयी है। आप ही मेरे देव हो... आप ही मेरे गुरु हो... आप ही मेरे तात हो और मात हो... आप ही मेरे भाई हो... और मित्र हो... इस लोक और परलोक में आप ही मेरे उद्धारक हो...' राजा गुरुदेव के चरणों में झुक गया।

यात्रा सफल हो गई थी।

सभी आनन्द और हर्षोल्लास से भरेपूरे होकर पाटन की ओर लौटे।

❖ ❖ ❖

१३. देवबोधि की पराजय

भृगुपुर नाम का नगर था।

उस गाँव में देवबोधि नाम का एक संन्यासी रहता था। उसने सरस्वती देवी की उपासना की थी। सरस्वती उस पर प्रसन्न हुई थी। उसने 'सारस्वतमंत्र' सिद्ध किया था। वह श्रेष्ठ विद्वान बना था। और लोगों को आश्चर्यचकित कर दे, वैसी अद्‌भुत कलाएँ उसने अर्जित की थी।

एक दिन एक मुसाफिर ने आकर देवबोधि संन्यासी से कहा : 'पाटन में 'हेमचन्द्राचार्य' नाम के जैनाचार्य के ज्ञान और पुण्य प्रभाव से गुजरात का राजा कुमारपाल जैन धर्म को मानने लगा है। इससे प्रजा में भी 'जैन धर्म श्रेष्ठ है' की मान्यता दृढ़ होती जा रही है।'

यह बात सुनकर देवबोधि सोचने लगा :

'मेरे जैसा विद्वान और चमत्कारी गुरु जिन्दा-जागता बैठा है... और गुजरात का राजा अपना कुल धर्म छोड़कर, शैव धर्म का त्याग करके जैन धर्म को स्वीकार करे - यह बात असह्य है... यह नहीं होना चाहिए। किसी भी कीमत पर मैं राजा को पुनः शैव धर्म का उपासक बनाऊँगा।'

यह सोचकर देवबोधि पाटन में आया।

एक शैव मंदिर में उसने अपना डेरा डाला।

मंदिर में सुबह-शाम छोटे-बड़े अनेक लोग महादेव के दर्शन करने के लिए आते थे! देवबोधि संन्यासी को वहाँ देखकर लोग उसे भी प्रणाम करते। देवबोधि उन्हें छोटे-बड़े चमत्कार दिखाने लगा।

चमत्कार को नमस्कार!

देवबोधि के चमत्कार की बातें पाटन में घर-घर फैलने लगी!

- शैव मंदिर में एक चमत्कारी संन्यासी आया है...!

- पल-पल में वह रूप बदलता है!

- लोगों को सही भविष्य बताता है!

- आकाश में से शिव की मूर्ति ले आता है!

- सोनामुहरें बरसाता है...

ऐसी तरह-तरह की बातें पाटन में फैलने लगी। बात पहुँची राजा कुमारपाल के पास। राजा भी संन्यासी के चमत्कार देखने के लिए लालायित हुआ।

देवबोधि को राजा का बुलावा आया।

देवबोधि को यही तो चाहिए था!

अगले दिन सबेरे देवबोधि राजसभा में जाने के लिए निकला।

कदलीदल के पत्तों का उसने आसन बनाया।

कमल के मृणालकंद के डंडे बाँधे।

और आठ-दस साल के बच्चों ने देवबोधि की उस पालकी को उठाया।

इतनी नाजुक नन्हीं सी खिलौने की पालकी में मोटा-तगड़ा देवबोधि बैठा हुआ था। पाटन के लोगों को तो बिना पैसे का तमाशा देखने को मिला। सैंकड़ों आदमी देवबोधि का जयजयकार करते हुए उसके पीछे चलने लगे।

जुलूस राजसभा के पास पहुँचा। कुमारपाल और अन्य मंत्रीगण देवबोधि का स्वागत करने के लिए खड़े थे। वे सब विस्मित हो उठे। कुमारपाल सोचता है : 'इस संन्यासी में कोई अद्‌भुत कला है...!'

देवबोधि पालकी में से उतरकर राजा के द्वारा रखे गये सुवर्णासन पर बैठा।

राजा ने प्रणाम किया। देवबोधि ने आशीर्वाद दिये।

फिर तीन घंटे तक देवबोधि ने राजा और प्रजा को विविध चमत्कार दिखा कर सभी का मनोरंजन किया। राजसभा का विसर्जन हुआ।

देवबोधि ने राजा से पूछा :

'महाराजा, आप मध्याह्न में देव पूजा करते हैं ना?'

'राजा ने कहा : 'हाँ, मैं रोजाना दोपहर में ही देवपूजा करता हूँ।'

देवबोधि ने कहा :

'मुझे तुम्हारी देवपूजा देखनी है!'

राजा ने कहा : 'मैं स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहनकर आता हूँ... फिर आपको मैं मेरे साथ देव मंदिर में ले चलूँगा।'

राजा ने स्नान किया। पूजा के लिए शुद्ध वस्त्र पहने। देवबोधि को साथ लेकर वे मंदिर में गये। मंदिर में राजा ने श्री जिनेश्वर भगवान की एकाग्रचित्त

से पूजा की। स्तवना की।

पूजाविधि पूरी करके जब राजा और देवबोधि महल पर आये तब देवबोधि ने कहा :

'राजेश्वर, कुलपरम्परा से चला आ रहा शैव धर्म छोड़कर इस जैन धर्म को स्वीकार क्यों किया ?'

'महाराज, शैव धर्म अच्छा है, परन्तु उस में हिंसा है। जैन धर्म अहिंसा का उपदेश देता है जो कि...'

देवबोधि ने राजा की बात बीच में ही काटते हुए कहा : 'तब फिर तुम्हारे पूर्वजों ने क्यों शैव धर्म अंगीकार किया था? हमें हमारा धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। यदि तुम्हें मेरी बात पर भरोसा नहीं हो तो मैं तुम्हें तुम्हारे पूर्वज मूलराज वगैरह से रूबरू मिलवा दूँ! उन्हें पूछ लो! ब्रह्मा-विष्णु और महेश को बुलवा लूँ... उनसे पूछ लो कि कौन सा धर्म श्रेष्ठ है?'

देवबोधि ने उसी समय अपने मंत्र बल से कुमारपाल के पूर्वज राजा मूलराज वगैरह को हाजिर किया। कुमारपाल ने उन सब को प्रणाम किया। इसके बाद ब्रह्मा-विष्णु और महेश को उपस्थित कर दिये। कुमारपाल यह सब नजारा देखकर चकित् रह गये।

- चार मुँहवाले ब्रह्माजी वेदमंत्रों का उच्चारण कर रहे थे।

- चार हाथवाले कृष्ण के पास शंख-चक्र वगैरह शस्त्र थे।

- तीन आँखवाले शंकर के गले में साँप झूल रहे थे।

- तीनों देव अत्यंत तेजस्वी थे। कुमारपाल को उन में परम ज्योति के दर्शन हो रहे थे।

ब्रह्माजी ने कहा :

'गुर्जरेश्वर, हमें पहचाना? हम इस सृष्टि का सर्जन करनेवाले... पालन करनेवाले और संहार करनेवाले-ब्रह्मा-विष्णु और महेश हैं। हम ही जीवों के जन्म-मृत्यु और जीवन के दाता हैं। हमारे द्वारा बताये गये धर्म से जीवात्मा स्वर्ग और मोक्ष के अनंत सुख प्राप्त करता है... इसलिए तेरी सभी भ्रमणाएँ दूर करके हमारी उपासना कर। शुद्ध वैदिक धर्म का सुरीति से पालन कर। इसी से तेरी मुक्ति होगी। और यह देवबोधि महायोगी है। यह हमारा ही प्रतिबिम्ब है... यों समझना। उसके कहे मुताबिक सभी कार्य तू करना।'

देवों का कथन पूरा हुआ। तत्पश्चात् मूलराज वगैरह पूर्वज बोले :

'वत्स, कुमारपाल! हम सातों तेरे पूर्वज हैं। तू हमें शायद नहीं पहचानता होगा। हम तुझे यह कहने के लिए आये हैं, कि तू हमारे गृहीत और आचरित धर्म का त्याग मत करना। हम इन्हीं ब्रह्मा-विष्णु और महेश देवों को मानते हैं। उन्ही का बताया हुआ धर्म मानते थे। इसलिए आज हम स्वर्ग के सुखों का अनुभव कर रहे हैं। हमने हमारे पूर्वजों का धर्म कभी बदला नहीं था। अतः तुझे भी अपने पूर्वजों का धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। तुझसे ज्यादा क्या कहना? तेरा भला हो!'

देव अदृश्य हो गये।

पूर्वज भी अदृश्य हो गये।

राजा कुमारपाल आश्चर्य में डूब गये। उनकी बुद्धि कुण्ठित हो गई। एक ओर देवपत्तन के सोमनाथ के वचन और दूसरी ओर देवबोधि के बताये हुए देवों के वचन!! कौन सही... कौन गलत? कौन सच्चा... कौन मायावी?' कुमारपाल का सिर चकराने लगा। उन्होंने देवबोधि से कहा :

'ठीक है... आप जाइये... मैं आपके कहे अनुसार ही करूँगा!'

❍ ❍ ❍

इस सारी घटना में महामंत्री उदयन के पुत्र वाग्भट मंत्री, राजा कुमारपाल के साथ थे। देवबोधि के चमत्कार उन्होंने भी प्रत्यक्ष देखे थे।

वे राजमहल से सीधे ही आचार्यदेव के पास गये। आचार्यदेव को वंदना करके उन्होंने कहा :

'गुरुदेव, पाटन में आये हुए देवबोधि नाम के संन्यासी के चमत्कारों की बातें आपके कानों तक पहुँची होगी।'

आज राजसभा में उस ने कई तरह के चमत्कार बताये! गुरुदेव, यह योगी कोई साधारण या मामूली नहीं है... उसने योगबल से ब्रह्मा-विष्णु-महेश को बुलाया...अरे...मूलराज...भीमदेव वगैरह पूर्वजों को प्रत्यक्ष उपस्थित कर दिखाया!

अपने महाराजा भी उसके ऐसे चमत्कार देखकर उसकी ओर खिंच जाएँ... यह बहुत संभव है! गुरुदेव, मुझे चिंता एक ही बात की सता रही है कि कहीं महाराजा उस योगी के प्रभाव में अभिभूत होकर जैन धर्म का त्याग न कर दे?'

आचार्यदेव ने वाग्भट्ट मंत्री की बात को शांति से सुना और कहा :

'वाग्भट्ट, तू तनिक भी चिंता मत कर। उसका उपाय कल प्रवचन में हो जाएगा। तू कल महाराजा को प्रवचन में ले आना।'

वाग्भट्ट ने कहा : 'अवश्य, गुरुदेव! महाराज को ले आऊँगा।'

वाग्भट्ट घर पर गये। भोजन वगैरह से निवृत्त होकर वे राजमहल में महाराजा के पास गये। वाग्भट्ट मंत्री, कुमारपाल के प्रिय और निजी मंत्री थे। वाग्भट्ट बुद्धिशाली और पराक्रमी थे। उनकी वाणी में हमेशा मधुरता का रस घुला रहता था। वे कार्यकुशल मंत्री थे।

कुमारपाल तो उस दिन देवबोधि के दैवी प्रभाव में इस कदर आकर्षित हो गया था कि आने-जाने वाले हर एक के साथ वह देवबोधि की ही चर्चा करता था। वाग्भट्ट ने कुमारपाल को प्रणाम किया और अपने आसन पर बैठे। कुमारपाल ने कहा :

'क्यों वाग्भट्ट? देखा न महात्मा देवबोधि का चमत्कार? जैसे कि साक्षात् देव हो! सही है ना?'

'महाराजा, देव भी जिनके चरणों में रहते हैं... उनकी महिमा तो निराली होती है! इन योगीराज की तुलना किस से की जाए यही एक समस्या है! चन्द्र के पास तो सोलह कलाएँ ही होती है जब कि योगी तो सैंकड़ो कलाओं के स्वामी है!' वाग्भट्ट ने बड़ी नम्रता से कहा।

राजा बोला :

'मंत्री, तेरे हेमचन्द्रसूरिजी के पास ऐसी कोई कला है सही? हो तो बात कर।'

मंत्री एकाध पल के लिए विचलित हो उठे। राजा ने 'तेरे हेमचन्द्रसूरि' जो कहा। वह मंत्री को चुभ गया। परन्तु बोलते समय राजा के चेहरे पर सरल स्मित था, इसलिए स्वस्थ होकर मंत्री ने कहा :

'महाराजा, सागर में रत्न तो ढेर सारे होते हैं! आचार्यदेव तो ज्ञान और कलाओं के खजाने रूप हैं।'

कुमारपाल सहसा बोल उठे :

'ठीक है.... तो फिर, कल सबेरे हम उनके पास जाकर पूछेंगे। तू यहाँ पर ठीक समय पर आ जाना। हम साथ चलेंगे।'

'महाराजा, मैं अवश्य आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।'

वाग्भट्ट वहाँ से निकलकर सीधे ही आचार्यदेव के पास गये। गुरुदेव को वंदना करके उन्होंने कहा :

'गुरुदेव, महाराजा ने स्वयं ही कल सबेरे आप के पास आने के लिए कहा है।'

'ठीक है, वाग्भट्ट! वह आएगा ही। प्रवचन के दौरान उसे वह चमत्कार देखने को मिलेगा कि उस योगी के चमत्कार फीके लगेंगे। मामूली लगेंगे।'

वाग्भट्ट मंत्री को गुरुदेव पर शत प्रतिशत विश्वास था। उन्होंने गुरुदेव को वंदना की। निश्चिंत होकर अपने घर पर गये।

❍ ❍ ❍

उपाश्रय में प्रवचन सभा भरी हुई है।

आचार्यदेव धर्म का उपदेश दे रहे हैं।

एक हजार स्त्री-पुरुष लीन-तल्लीन होकर उपदेश की गंगा में बह रहे हैं। राजा कुमारपाल आचार्यदेव के सामने बैठे हुए हैं। उपदेश सुनने में एकचित्त हैं। उनके बराबर पीछे वाग्भट्ट मंत्री बैठे हुए हैं।

एक घंटा बीता और आचार्यदेव जो सात पाट पर बैठे हुए थे... वे पाट एक के बाद एक खिसकने लगी। सातों पाटें खिसक गई। और आचार्यदेव आकाश में बिना किसी सहारे के अधर में बैठे रहे। उपदेश देते रहे।

राजा कुमारपाल की आँखें विस्फारित हो उठीं। वे आश्चर्य से बोल उठे... 'अद्‌भुत!'

प्रजाजन हर्ष से पुलकित बन गये। गद्‌गद् हो उठे। वाग्भट्ट मंत्री की आँखें हर्ष के आँसुओं से छलक आई।

राजा सोच रहा है : 'कल देवबोधि को कदली पत्र के आसन पर बैठा हुआ देखा था... वह मौन था। जबकि ये तो बिना किसी आधार के आकाश में-अधर में बैठ कर उपदेश दे रहे हैं। कितनी अद्‌भुत योगशक्ति है इन महापुरुष में!

राजा ने खड़े होकर विनति की :

'गुरुदेव, अब आप पाट पर बिराजमान होकर प्रवचन दीजिए। आपकी इस कला के समक्ष तो अच्छे-अच्छे कलाकारों की कलाएँ फीकी पड़ जाएँगी! महासागर की उफनती-उछलती हुई मौजों के सामने भला ताल-तलैये की लहरों की क्या बिसात?'

आचार्यदेव ने कहा... 'चलो, अब पास के कमरे में जाएँ... तुम्हें चमत्कार ही देखना है ना? मैं तुम्हें चौबीस तीर्थंकरों के दर्शन करवाता हूँ!'

वाग्भट्ट के साथ कुमारपाल, गुरुदेव के पीछे-पीछे कमरे में गये। कमरा बंद कर दिया गया। गुरुदेव एक आसन पर बैठ गये। आँखें बंद कर के ध्यान लगाया कि पूरा कमरा प्रकाश से झिलमिला उठा।

कुमारपाल ने ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक के चौबीस तीर्थंकरों को प्रत्यक्ष देखा! समवसरण में बैठे हुए देखा! चौबीस समवसरण देखे! प्रत्येक समवसरण में हर एक तीर्थंकर चारों दिशा में दिखायी देते थे और समवसरण में देव-मनुष्य-पशु वगैरह शांति से बैठे हुए तीर्थंकरों का उपदेश सुन रहे थे।

कुमारपाल तो ठगे-ठगे से रह गये! 'क्या करना?.... क्या कहना!' कुछ सुझ नहीं रहा था। आचार्यदेव ने उसका हाथ पकड़कर अपने निकट में बिठाया।

तीर्थंकरो के उपदेश की वाणी उस कमरे में गूँजने लगी :

'कुमारपाल, सोना-चाँदी, हीरे-मोती वगैरह द्रव्यों की परीक्षा करनेवाले परीक्षक तो कई होते हैं... परन्तु धर्मतत्त्व के परीक्षक तो विरले ही होते हैं! ऐसा विरल तू एक है! तूने हिंसामय अधर्म का त्याग करके दयामय धर्म को स्वीकार किया है।

याद रखना राजन्! तेरी सारी समृद्धि धर्मरूपी पेड़ के फूल समान है। आगे तो तुझे मोक्षरूप फल मिलनेवाला है। सचमुच... तू महान सौभाग्यवान् है कि तुझे ऐसे ज्ञानी हेमचन्द्रसूरिजी मिले हैं। तू उनकी आज्ञा का भलीभाँति पालन करना।

तीर्थंकरों की वाणी बंद हुई, वे अदृश्य हो गये।

इतने में कुमारपाल के पूर्वज राजा प्रगट हुए। वे कुमारपाल से गले मिले। और कुमारपाल से कहने लगे :

'वत्स, कुमारपाल! गलत धर्म को छोड़कर सच्चे धर्म को स्वीकारनेवाला तेरे जैसा हमारा पुत्र है इसके लिए हम गौरव महसूस करते हैं! यह एक जिनधर्म ही मुक्ति दिलाने के लिए समर्थ है! इसलिए तेरे चंचल चित्त को स्थिर कर और तेरे परम भाग्य से मिले हुए इन गुरुदेव की सेवा कर। उनकी आज्ञा का पालन कर।'

यों कहकर पूर्वज भी हवा में गायब हो गये!

कमरे में रहे केवल राजा...मंत्री और गुरुदेव!

राजा कुमारपाल गहरे सोच में डूब गया है।

'ब्रह्मा-विष्णु और महेश ने अलग बात कही। इन तीर्थंकरों ने दूसरी बात कही! और पूर्वजों ने देवबोधि की उपस्थिति में क्या कहा और यहाँ पर एकदम उल्टी बात कही! क्या सच और क्या झूठ?'

दोनों तरफ से परस्पर विपरीत मंतव्यों से राजा की बुद्धि उलझ गई! उसने आचार्यदेव के सामने देखा... आचार्यदेव धीरे से मुस्कुरा रहे थे। राजा ने पूछा :

'यह सब क्या हो रहा है गुरुदेव? मैं किसे मानूँ? क्या मानूँ?'

गुरुदेव ने पूछा :

'देवबोधि ने जो दिखाया... वह क्या लगा तुम्हें?'

राजा बोला : 'मैं न तो उसे समझ पाया हूँ... न इसे समझ पा रहा हूँ।'

गुरुदेव ने कहा :

'राजन्। यह सब इन्द्रजाल है! देवबोधि के पास वैसी एक ही कला है...मेरे पास ऐसी सात कलाएँ है! हम दोनों ने तुम्हें जो कुछ दिखाया... वह सपना है... जादूगरी है... मायाजाल है!'

और, यदि तुम्हें इन बातों पर भरोसा नहीं होता हो... यहीं पर मैं तुम्हें समूचा विश्व दिखा सकता हूँ! देखना है? परन्तु वह सब नाटक की आवश्यकता नहीं है। सच तो, पहले जो सोमनाथ ने तुम्हें कहा वही है!'

राजा का मन आश्वस्त हुआ।

उसने भावपूर्वक गुरुदेव को वंदना की और कहा :

'गुरुदेव, भ्रमणा के जाल में से बाहर निकालने का एक ओर भारी उपकार आपने मुझ पर किया!!'

राजा राजमहल को लौट गया।

❖ ❖ ❖

१४. काशीदेश में अहिंसा-प्रचार

राजा कुमारपाल के दिल में आचार्यदेव हेमचन्द्रसूरिजी के प्रति सुदृढ़ श्रद्धा स्थापित हो गई थी। वे सोचते हैं :

- यही मेरे देव!

- यही मेरे गुरु!

- ये कहें वही मेरा धर्म!

आचार्यदेव ने भी राजा को सर्वप्रथम परमात्मा का स्वरूप समझाया। गुरु का स्वरूप समझाया और धर्म का स्वरूप बताया।

राजा का व्यक्तिगत जीवन शक्य इतना निष्पाप बनाया। उसे अहिंसा धर्म का उपदेश दिया। राजा के जीवन में हिंसा का तनिक भी स्थान नहीं रहा! न मांसाहार... न शिकार... हर तरह की हिंसा का राजा ने परित्याग कर दिया था।

इसी तरह, दैनिक धर्मानुष्ठान में भी राजा प्रवृत्त होने लगा। रोज़ाना परमात्मा की पूजा करता है...

सामायिक में समत्व की साधना करता है...

पर्वतिथि के दिन पौषध ग्रहण करके आत्मा को पापरहित बनाने की प्रक्रिया जारी रखता है।

अनेक व्रत लिये राजा ने!

अनेक नियम ग्रहण किये राजा ने!

गुरुदेव ने कुमारपाल को राज्य में हिंसा बन्द करवाने का उपदेश दिया। राजा को उपदेश अच्छा लगा। राजा ने गुजरात के तमाम शहर...नगर और गाँवों में ढिंढ़ोरा पिटवा दिया :

'कोई भी आदमी यदि हिरन, बकरा, गाय, भैंस इत्यादि किसी भी जीव की हत्या करेगा वह राज्य का गुनहगार माना जाएगा। उसे कड़ी सजा दी जाएगी!'

राजा ने पाटन में उद्‌घोषणा करवा के

- कसाइयों के बूचड़खाने बन्द करवा दिये।

- मच्छीमारों को मच्छी मारने से रोक दिया।

- शिकारियों के शिकार पर प्रतिबन्ध लगाया।

- शराब की दुकानें बन्द करवा दी।

- जुए के अड्डे भी बाकायदा बन्द करवा दिये।

- अनछाना पानी पीना भी बन्द करवा दिया।

कोई भी मनुष्य एक छोटीसी जूँ को भी नहीं मार सके वैसा उमदा अहिंसा धर्म का गुजरात में पालन करवाने लगा।

इसके बाद अपनी हुकुमत के राज्यों में जीवहिंसा को बंद करवाने के लिए मंत्रियों को भिजवाया।

सौराष्ट्र, लाटदेश, मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ में अहिंसा धर्म को फैलाया। कोंकण प्रदेश में भी हिंसा को बंद करवाया।

- कहीं पर समझा-बुझा कर हिंसा बंद करवाई।

- कहीं पर रुपये-पैसे देकर जीवों को अभयदान दिलवाया।

- कहीं पर जोरतलबी करके भी हिंसा का रास्ता प्रतिबंधित किया।

एक दिन राजा कुमारपाल ने वाग्भट्ट मंत्री को बुलाकर कहा :

'मंत्री, मिट्टी के सात पुतले बनवाओ :

१. मांसाहारी का, २. शराबी का, ३. जुआरी का, ४. शिकारी का, ५. चोर का, ६. स्त्रियों को सतानेवाले का, और ७. लड़कियों के सौदागरों का।

फिर हर एक पुतले को अलग-अलग गधे पर बिठाने का। उन सातों गधेसवारों को पाटन के बाजारों में और गलियों में घुमाने का। चाबूक मार-मार कर उन्हें नगर के बाहर मार भगाने का।

और एक दिन सचमुच, पाटन के राजमार्ग से सात प्रकार के बड़े पापों की गधेसवारी निकली! सब से आगे राजा के कर्मचारी ढोल पीट-पीट कर घोषणा कर रहे थे।

१. यदि कोई मांसाहार करेगा तो उसे देश में से बाहर निकाल दिया जाएगा।

२. यदि कोई शराब पीएगा तो उसका देशनिकाला किया जाएगा।

३. यदि कोई जुआ खेलेगा तो उसे देश से निकाल दिया जाएगा।

४. यदि कोई शिकार करेगा तो उसे देशनिकाला की सजा होगी।

५. यदि कोई चोरी करेगा तो उसे देश से बाहर कर दिया जाएगा।

६. यदि कोई स्त्रियों के साथ बुरा बरताव करेगा तो उसे देश में से बाहर निकाल दिया जाएगा।

७. यदि कोई लड़कियों को खरीदने-बेचने की कोशिश करेगा तो उसे देशनिकाला की कड़ी सजा दी जाएगी।

सुबह से लेकर शाम तक पाटन में ये सवारियाँ घूमती रही... आखिर में सातों सवारों को जंगल में छोड़ दिया गया।

❍ ❍ ❍

गुरुदेव श्री हेमचन्द्रसूरिजी ने कुमारपाल से कहा :

'राजन्, इन सभी प्रदेशों में -प्रांतों में, गाँव और नगरों में हिंसा बंद करवाने के लिए सब जगह पर तुम्हें कार्यक्षम अधिकारियों को नियुक्त करना चाहिए। कोई छुपे ढंग से या गुप्त रूप से भी हिंसा न करे... किसी जीव को मारे नहीं... इसकी सतर्कता रखनी चाहिए।'

राजा ने गुरुदेव की आज्ञा का पालन किया। हर एक गाँव और नगर में हिंसा को पूरी तरह रोकने के लिए राजपुरुषों को नियुक्त किया गया। सतर्कताभरे कदम उठाये गये।

एक छोटा सा गाँव था।

उस में एक व्यापारी रहता था।

एक दिन की बात है : व्यापारी अपने घर की चौपाल में बैठा है... उसकी पत्नी व्यापारी के बालों में तेल डालकर बालों को मालिश कर रही थी... अचानक उसे जूँ दिखाई दी। उसने अपने पति से कहा :

'तुम्हारे सिर में जूँ है!'

व्यापारी ने कहा : 'कहाँ है वह जूँ? बता मुझे!'

स्त्री ने जूँ निकालकर व्यापारी के हाथ में रखी। व्यापारी ने तुरन्त ही उस जूँ को मसलकर मार डाली।

उसकी पत्नी चिल्लायी : 'यह तुमने क्या किया? महाराजा कुमारपाल की आज्ञा है कि जूँ तक को नहीं मारना। यह बुरा काम किया तुमने!'

व्यापारी बदतमीजी से हँसता हुआ चिल्लाया...

'अरे...एक क्या... अनेक जूँए मारूँगा...क्या कर लेगा तेरा कुमारपाल मेरा?'

इतने में ही दूर रहे हुए राजपुरुष आये और उस व्यापारी को पकड़कर ले गये। साथ में मरी हुई जूँ को भी। उसे पाटन लाया गया। राजा के सामने खड़ा कर दिया गया। राजपुरुषों ने कहा :

'महाराजा, इस व्यापारी ने जानबूझकर जूँ को मारा है...' यों कहकर मरी हुई जूँ को डिब्बी में से निकालकर राजा को दिखाया।

राजा ने व्यापारी से पूछा :

'तू नहीं जानता है क्या मैंने सर्वत्र जीव हिंसा को प्रतिबिंधित किया है?'

'जानता हूँ...'

'तो फिर जानबूझकर जूँ को क्यों मारा?'

'व्यापारी हाथ जोड़कर बोला :

'महाराजा, वह मेरे सिर में मेरा खून पी रही थी...इसलिए मैंने उसे मार डाला!'

'अरे दुष्ट व्यापारी, उसने तेरा कितना खून पी लिया? सेर दो सेर खून पी लिया क्या तेरा? और जरा सा खून पीने की सजा के लिए तूने उसे मार डाला? अरे मूर्ख...खून तो जूँ की खुराक है। और तूने उसे मार डाला तो मुझे भी क्यों तुझे नहीं मार डालना चाहिए?'

व्यापारी गिड़गिड़ाने लगा...

'दया कीजिए मेरे पर... अब से ऐसा नहीं करूँगा।'

राजा बोला :

'तेरे से वह जूँ कमजोर थी... इसलिए तूने उसे मार डाला न? तू मुझसे कमजोर है तो मैं तुझे मार डालूँ न? निर्दय....तुझे उस छोटे से जंतु पर दया नहीं आई? वास्तव में तो तुझे मौत की सजा ही होनी चाहिए... परन्तु एक जूँ की खातिर तुझे मारना भी ठीक नहीं...

तुझे मौत की सजा तो नहीं करता हूँ... पर तेरी धन-संपत्ति में से एक सुन्दर मंदिर बंधवाया जाएगा। उसका नाम रहेगा... 'यूका-विहार' (यूका यानी जूँ) इस मंदिर को देखकर अन्य लोग भी जीव-जंतु को मारने से दूर रहेंगे।'

- पाटन में 'यूका विहार' नाम का जिनमंदिर बंधवाया गया।

- कुमारपाल के राज्य में सभी जूँ को मारने से भी डरने लगे।

कुमारपाल के साम्राज्य में दूध में पानी भी नहीं मिलाया जाता था। लोग डरते थे।

❍ ❍ ❍

एक बार कुमारपाल ने सुना कि :

काशी नाम का देश है। उसमें वाराणसी नाम का बहुत बड़ा नगर है। वहांके राजा का नाम है, जयन्तचन्द्र।

जयन्तचन्द्र का राज्य काफी विशाल है। उसकी सेना में हजारों हाथी हैं। लाखों घोड़े हैं। राजा पराक्रमी है... और उसकी सेना भी विराट् है।

गंगा और यमुना जैसी बड़ी नदियों के किनारे पर प्रजा बसती है। प्रजा की खुराक है मछली। रोजाना लाखों मछलियाँ मरती हैं... उन्हें जाल में पकड़कर मारा जाता है।

यह सुनकर राजा कुमारपाल का दयालु दिल काँप उठा। उसने सोचा : यह हिंसा... इतनी घोर हिंसा बंद करवाने के लिए कुछ न कुछ सोचना होगा। गंभीर उपाय करना होगा। युद्ध किये बगैर हिंसा बंद करवानी है... कुछ योजना बनानी होगी!'

कुमारपाल को एक सुन्दर सा उपाय हाथ लग गया।

एक श्रेष्ठ चित्रकार को बुलाकर उससे एक मनोहारी चित्र बनवाया।

'हेमचन्द्रसूरि को राजा कुमारपाल प्रणाम करता है।'

इस चित्र के साथ दो करोड़ सोनामुहरें और दो हजार घोड़े देकर अपने चार बुद्धिशाली मंत्रियों को वाराणसी की ओर रवाना किया।

मंत्री काफिलों के साथ नगरी के बाहर डेरा डालकर रुके। इतने सारे दो हजार घोड़ों को नगर में रखे कहाँ पर?

मंत्रियों ने सोचा :

इस वाराणसी नगरी का दूसरा नाम है मुक्तिपुरी! नाम मुक्तिपुरी और काम मछली मारने का! मछली खाने का! कितना विरोधाभास है दोनों में? इस नगर में छोटे-बड़े सभी मांसाहारी हैं...यहाँ पर हिंसा बंद करवाना मुश्किल है। मांसाहार लोगों की दिलचस्प खुराक है और मनपसंद खाना छुड़वाना मुश्किल होता है!

एक मंत्री ने अपना सुझाव दिया :

कुछ दिन हम यहाँ रुकें और यहाँ की गरीब...कमजोर...और दीनहीन प्रजा को अनाज बाँटें...कपड़े बाँटें...रूपये बाँटें! फिर मध्यमवर्गी लोगों को कपड़े व अनाज बाँटें। इसके बाद श्रीमंतों को अपने वहाँ निमंत्रित करके उन्हें श्रेष्ठ भोजन करवाये और उपहार में गुजरात की कला से रची-पची कलात्मक वस्तुएँ प्रदान करें...इस तरह प्रजा का प्रेम जीतकर फिर राजा से मिलें। इससे हमारा कार्य काफी हद तक आसान हो जाएगा।

अन्य तीन मंत्रियों के दिमाग में भी यह बात जच गई। कार्यवाही शुरू कर दी गई।

नगर के चारों दरवाजों पर गरीबों को अन्न-वस्त्र और पैसे देने का कार्य प्रारंभ हो गया। 'गुजरात के राजा कुमारपाल की ओर से यह सब दिया जा रहे है' वैसी घोषणा की गई। चार-पाँच दिनों में तो गरीबों के घर-घर में और हर झोंपड़े में राजा कुमारपाल का नाम प्रसिद्ध हो गया।

इसके पश्चात् मध्यमवर्गीय लोगों को भी आकर्षित किया गया और धनाढ्य लोगों का भी संपर्क बनाया गया।

इतना सब होने के बाद एक दिन चारों मंत्री राजा जयंतचन्द्र के पास गये। राजा को प्रणाम करके राजा कुमारपाल के द्वारा भेजा गया उपहार दिया। दो करोड़ सोनामुहरें और दो हजार घोड़े भेंट किये। फिर वह चित्र राजा के समक्ष रखा। राजा ने सर्वप्रथम गुर्जरपति की कुशलता पूछी। उस चित्र को हाथ में लेकर पूछा : 'यह क्या है?'

एक मंत्री ने कहा :

'महाराजा, इस चित्र में एक ओर हमारे राज्य के गुरुदेव हेमचन्द्राचार्य हैं और दूसरी ओर हमारे राजा कुमारपाल हैं। यह चित्र आपकों भेंट भिजवाकर हमारे महाराजा ने आपसे विनम्र शब्दों में संदेश भिजवाया है कि -

मेरे हेमचन्द्राचार्य नाम के गुरुदेव हैं। वे सर्वज्ञ हैं। वे लोगों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं। ऐसे श्रेष्ठ गुरु के पास मैंने दयाधर्म अंगीकार किया है। मैंने व्यक्तिगत जीवन में तो हिंसा का आचरण बंद किया ही है - साथ ही अपने समूचे राज्य में से हिंसा को निकाल दिया है। परदेशों में हो रही हिंसा को भी रोकने की मेरी तीव्र इच्छा है। इसके लिए मैंने अपने सचिवों को आपके पास भिजवाये हैं। और आपसे विनम्र अनुरोध करना है कि आप भी अपने राज्य में

से हिंसा को दूर करें। सभी दुःखों की जड़ है हिंसा। सभी सुखों का कारण है दया।

मेरी विनती पर गंभीरतापूर्वक सोचकर अपने इलाके में से हिंसा को दूर हटाएंगे। हिंसा का त्याग करेंगे वैसी मेरी अभ्यर्थना है।'

राजा जयन्तचन्द्र और राजसभा में उपस्थित सभी लोगों के दिल को राजा कुमारपाल का संदेश छू गया।

राजा ने कहा :

'मेरे प्यारे प्रजाजन, धन्य है वह गूर्जरदेश और धन्य है गुजरात की धरती जहाँ पर ऐसे दयालु राजा बसते हैं। जीवों की रक्षा के लिए, हिंसा को हटाने एवं अहिंसा की स्थापना करने के लिए कितने सुन्दर तरीके खोज निकाले हैं। गूर्जरेश्वर का मन सचमुच पुण्यकार्य में प्रवृत्त है। मैं उन्हें सच्चे दिल से धन्यवाद देता हूँ।

गूर्जरपति ने अपने गुरू हेमचन्द्राचार्य के उपदेश से दयाधर्म का प्रवर्तन किया है तो मैं गूर्जरपति की प्रेरणा से मेरे राज्य में... मेरी हुकुमत के इलाके में दयाधर्म का प्रवर्तन करूँगा। मेरा यह कर्तव्य है।

कहिए...मेरे प्रजाजन!

'आप सभी मांसाहार का त्याग करेंगे ना?'

'अवश्य महाराजा। आपकी आज्ञा हमें मंजूर है।' सभासदों ने घोषणा की।

राजा जयंतचन्द्र ने अपने महामंत्री से कहा :

'महामंत्रीजी, आज ही इस नगर में और राज्य के सभी गाँव नगर में ढिंढ़ोरा पिटवा दो कि मछली पकड़ने की जाली और जीव हिंसा करने के तमाम शस्त्र-हथियार वाराणसी नगरी के मध्य चौक में सभी डाल जाए। फिर उस ढेर को गूर्जरपति के इन सचिवों की उपस्थिति में आग लगा दी जाए... और देश में उद्‌घोषणा करवा दो कि काशी देश में हिंसा को जला दिया गया है। अब से हिंसा का कोई साधन-हथियार बनेगा नहीं-बिकेगा नहीं।'

महामंत्री ने राजा की आज्ञा के मुताबिक समूचे देश में घोषणा करवा दी। पाँच-सात दिन में तो वाराणसी के मध्यचौक में एक लाख अस्सी हजार जालियाँ (मछली पकड़ने की जाली) इकट्ठी हो गयी। अन्य शस्त्रों का भी ढेर लग गया।

हजारों नगरजनों की उपस्थिति में और गुर्जरपति के चार सचिवों की हाजिरी में उस ढेर को जला दिया गया। काशी देश में से हिंसा नेस्त-नाबूद कर दी गई।

राजा जयन्तचन्द्र ने चारों सचिवों को बुलाकर गूर्जरपति के लिए चार करोड़ सुवर्णमुद्राएँ और चार हजार घोड़ों का काफिला भेंट किया। उन्हें बड़े प्यार और सम्मान के साथ बिदाई दी।

चारों सचिव गुर्जरपति के द्वारा निर्दिष्ट कार्य को सुन्दर ढंग से परिपूर्ण कर के पाटन लौट आये।

राजसभा भरी हुई थी।

राजा कुमारपाल राजसिंहासन पर बैठे हुए थे। समीप में ही काष्ठासन पर गुरुदेव हेमचन्द्रसूरिजी बिराजमान थे। चारों सचिवों ने राजसभा में प्रवेश किया। सर्वप्रथम गुरुदेव को प्रणाम किये और फिर राजा को प्रणाम करके, वाराणसी नगरी का सारा वृत्तान्त निवेदित किया। चार करोड़ सोनामुहरें और चार हजार घोड़ो के उपहार की बात कही।

गुरुदेव श्रीहेमचन्द्रसूरिजी जीवदया के इस अद्‌भुत कार्य से बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने महाराजा से कहा :

'कुमारपाल, भारत में धर्मिष्ठ राजा तो बहुत हुए हैं - परन्तु तेरे जैसा कोई नहीं। भविष्य में भी धर्मिष्ठ राजा तो होंगे पर तेरे जैसे नहीं! तूने कहीं पर भक्ति से तो कहीं पर शक्ति से... तो कहीं पर ढेर सारी संपत्ति से तेरे देश में और परदेश में अहिंसा का प्रसार किया है।'

काशीराज जयंतचन्द्र राजा के साथ गुर्जरेश्वर कुमारपाल की मैत्री गाढ़ हुई।

❖ ❖ ❖

१५. राजा का रोग मिटाया

आदमी जब कोई अच्छा कार्य करने की प्रतिज्ञा लेता है तब किसी न किसी रुप में उसकी परीक्षा होती है... उसका इम्तिहान लिया जाता है। सत्वशील आदमी अडिग रहता है...सत्वहीन पुरुष डगमगा जाता है!

एक दिन की बात है!

राजमहल में गुरुदेव श्रीहेमचन्द्रसूरि और राजा कुमारपाल तत्त्वचर्चा करते हुए बैठे थे। इतने में वहाँ पर देवी कंटकेश्वरी के मंदिर के पुजारी आये और दोनों को नमस्कार करके कहा :

'महाराजा, आप जानते है कि देवी कंटकेश्वरी आपकी गौत्रदेवी है। नवरात्र के दिनों में, अंतिम तीन दिन देवी को पशु बलिदान दिया जाता है और देवी की विशिष्ट पूजा की जाती है।

सप्तमी के दिन सात सौ बकरे और सात भैंसों का बलिदान दिया जाता है।

अष्टमी के दिन आठ सौ बकरे और आठ भैंसों का बलिदान दिया जाता है।

नवमी के दिन नौ सौ बकरे एवं नौ भैंसों का बलि चढ़ाया जाता है।

इस तरह कुल २४०० बकरे और २४ भैंसों का बलिदान दिया जाता है। अतः इतने बकरे व भैंसे आज ही हमें देने की कृपा करें... ताकि देवीपूजा का कार्य अच्छी तरह संपन्न हो सके। यदि इस तरह बलिदान न दिया गया तो देवी कुपित होती है और अनर्थ हो सकता है!'

यों निवेदन करके पुजारी खड़े रहे।

राजा ने गुरुदेव के सामने देखा और कान में कहा :

'इसका क्या जवाब दूँ?'

गुरुदेव ने कान में कहा :

जिनेश्वर भगवंतों ने तो कहा है कि देव-देवी जीवहिंसा का पाप नहीं करते हैं। पर कुछ कुतूहलप्रिय देव-देवी इस तरह के तमाशे पसंद करते हैं...उनके समक्ष पशुओं की हत्या होती हो...खून के फव्वारे छूटते हो...यह उन्हें अच्छा

लगता है...हालाँकि ये देव-देवी निम्न कक्षा के होते हैं।

ये पुजारी जो माँग कर रहे हैं...वह तो इनके स्वार्थ के लिए सारा खेल रचा रहे हैं। देवीपूजा के बहाने मांसभक्षण की इनकी पापलीला ढँकी रहती है!

इसलिए तुम पशुओं को देने की तो हामी भर लो... पर साथ ही सूचना कर देना कि इन सभी पशुओं को देवी के मंदिर के परिसर में रखना है...फिर मंदिर बंद कर देना। मंदिर के बाहर चौकीदार को बिठा देना...सारी रात पशु मंदिर में रहेंगे। यदि देवी को स्वयं को बलिदान लेना होगा तो वह ले लेगी!

पर देखना...सबेरे सभी पशु कुशल मिलेंगे।

पशुओं को वापस लेकर उनकी जितनी क़ीमत होती हो उतनी क़ीमत की खाद्य सामग्री-नैवेद्य वगैरह देवी को अर्पण करवा देना.'

राजा समझ गये।

उन्होंने उसी तरह किया।

सबेरे सभी पशु मंदिर के प्रांगण में नाचते-कूदते हुए दिखायी दिये। राजा का मन प्रसन्नता से पुलकित हुआ! उन्होंने पूजारियों को बुलाकर फटकारते हुए कहा :

'देखो...अपनी खुली आँखों से! सारे पशु जिन्दा हैं या नहीं? देवी को बलिदान चाहिए था तो वह पशुओं की हत्या नहीं कर देती पर एक भी पशु मरा नहीं है...यह तो तुम्हारा ढकोसला है सब! तुम्हें देवी को बलिदान देने के बहाने मांसाहार का मज़ा उड़ाना हैं पर ध्यान रखना...मैं कुमारपाल हूँ...मेरी समझ में सारी बात आ चुकी है...मैंने सर्वज्ञ के तत्त्वों को जाना है...तुम इस कदर मुझे ठग नहीं सकते!

खबरदार... जो आज के बाद ऐसा कोई ढकोसला रचाया तो! चले जाओ मेरी आँखों के आगे से...अपना काला मुँह लेकर कभी आना मत इधर!

राजा का चेहरा गुस्से से तमतमा उठा। पुजारी लोग तो अपना-सा मुँह लटकाये वहाँ से चले गये।

राजा ने अपने आदमियों से कहकर उन सभी पशुओं को बिकवा कर उसके पैसे का नैवेद्य खरीदवाया और देवी के समक्ष अर्पण कर दिया।

इस तरह नवरात्र में देवी पूजा का विधि संपन्न करके दसवें दिन, कुमारपाल अपने राजमहल के शयनगृह में परमात्मा के ध्यान में लीन थे तब एक भयानक

घटना हुई।

आकाश में से एक दिव्य स्त्री राजमहल में राजा के शयनखंड में उतर आई। उसके शरीर में से प्रकाश निकल रहा था... पूरा शयनखंड प्रकाश से भर गया। उस दिव्य स्त्री के हाथ में 'त्रिशूल' नाम का शस्त्र था। उस देवी ने राजा को संबोधित करते हुए कहा :

'राजन्, जरा आँखें खोलकर मेरे सामने तू देख!'

राजा ने आँखें खोलीं और देवी के सामने देखा... पूछा :

'आप कौन हैं?'

'मैं कंटकेश्वरी नाम की तेरी गोत्रदेवी हूँ।'

'आनन्द हुआ आपके दर्शन पाकर!'

'राजन् मैं बलिदान लेने के लिए आई हूँ... तेरे पहले हुए सभी राजाओं ने मुझे बलिदान दिया है... तुझे भी देना चाहिए। तुझे कुलपरम्परा नहीं तोड़नी चाहिए।'

'देवी, मैनें आपको तीनों दिन नैवैद्य अर्पण किया है।'

'नैवेद्य नहीं चलेगा... पशु चाहिए!'

'इसका अंजाम क्या आएगा मालूम है? मैं तुझे पलक झपकते जलाकर भस्म कर सकती हूँ!'

'देवी, मेरी बात सुनिये... शांति से मेरा कहना गौर से सुनिए, फिर आपको जो उचित लगे वह कीजिए...

मैंने जिनेश्वर देव का धर्म पाया है। वह सच्चा धर्म है। जिनेश्वर भगवान किसी भी जीव की हिंसा करने की मना करते हैं। मैंने अपनी पूर्वावस्था में अज्ञानतावश जो हिंसा की है... वह भी मेरे दिल में काँटें की भाँति चुभ रही है... एक जीव की हिंसा से भी अनंत-अनंत पाप कर्म बंधते हैं... फिर कसाई होकर सैंकड़ो जीवों की हत्या तो मैं कैसे करूँगा?

देवी, आप को भी इन पशुओं की हिंसा से खुश नहीं होना है। देव-देवी तो दयालु होते हैं... आपको तो जीवहिंसा रोकनी चाहिए।

देवी, मैनें तो जीवहिंसा नहीं करने की प्रतिज्ञा की हुई है... तुम्हें जो करना हो वह कर सकती हो... मैं तो एक भी जीव की हिंसा करनेवाला नहीं! पशुओं का बलिदान देना कभी भी किसी भी हालात में मुझसे नहीं होगा!'

यह सुनकर देवी क्रोध के मारे आग सी भभक उठी। उसने कुमारपाल को

त्रिशूल मारा... और पलभर में वहाँ से अदृश्य हो गयी!

राजा ने घी के दिये जलाये।

त्रिशूल का घाव देखा।

लहू नहीं निकला था पर पूरा शरीर कोढ़ रोग से व्याप्त हो उठा था। राजा ने दर्पण में देखा तो वह चौंक उठा।

- नाक दब गया था।

- कान लटक गये थे।

- उंगलियों के नाखून उखड़ गये थे।

- शरीर पर सफेद दाग उभर आये थे... और उन दाग वाले हिस्से में से पीप बह रहा था।

फिर भी राजा को देवी पर गुस्सा नहीं आया।

जीवदया के धर्म पर तिरस्कार का भाव पैदा नहीं हुआ। राजा ने सोचा : 'यह संसार ही ऐसा है... यह सब कर्मों का नाटक है। पापकर्मों का उदय आने पर ऐसा होना आश्चर्य की बात नहीं है। फिर भी मुझे क्यों चिंता करनी चाहिए? मेरी चिंता करनेवाले मेरे गुरुदेव स्वयं बिराजमान तो हैं!'

अभी रात बाकी थी।

राजा ने महामंत्री उदयन को बुलवाया।

महामंत्री को बुलवा लाने के लिए अपने अत्यन्त विश्वस्त आदमी को भेजा। राजा नहीं चाहता था कि रात की बात महामंत्री के अलावा किसी को मालूम हो चूँकि दूसरे लोगों को पता लगे तो वे तरह-तरह की बातें फैलाएंगे...गलतफहमी पनपेगी।

'देखो... महाराजा ने अहिंसा धर्म का पालन किया... तो क्या फल मिला? राजा के पूरे शरीर में कोढ़ रोग फैल गया! इसलिए जिनेश्वर देवों का अहिंसा धर्म स्वीकार करने योग्य नहीं है!'

ऐसी कोई गलत धारणा फैले नहीं इसके लिए उदयनमंत्री को अपने शयनखंड में बुलाकर रात को हुई सारी घटना बतायी। अपना शरीर बताया।

महामंत्री उदयन को बहुत दुःख हुआ... साथ ही महाराजा की दृढ़ धर्मभावना के प्रति अत्यंत अहोभाव पैदा हुआ। उन्होंने कहा :

'महाराजा, आपके ऊपर घिर आये इस दैवी प्रकोप को देखकर मेरा मन अत्यन्त व्यथित हुआ है, किन्तु आपकी निडरता... और प्रतिज्ञापालन की दृढ़ता देखकर मेरा दिल गर्व महसूस कर रहा है।'

कुमारपाल ने कहा :

'महामंत्री, मेरे शरीर को कोढ़ रोग ने घेर लिया इसकी मुझे तनिक भी न तो चिंता है न ही परवाह है। परन्तु जब लोगों को मालुमात होगी तब जैन धर्म की बदनामी होगी। मुझे दुःख उस बात का है। जितने लोग उतनी मुँह बातें करेंगे... कुछ विधर्मी लोग तो जैन धर्म को ही इल्जाम देंगे!

'देखो... राजा ने जैनधर्म को स्वीकार किया... उसका अंजाम! कोढ़ रोग मिला बदले में! कुमारपाल राजा की भाँति जो भी शैव धर्म का त्याग करके जैनधर्म स्वीकार करेगा उसे इसी जन्म में बड़े भारी कष्ट सहने होंगे! हमारे देव की सेवा करने से तो कोढ़ वगैरह रोग दूर हो जाते हैं... जबकि जिनेश्वर देव की सेवा से तो रोग न हो तो भी आ घेरते हैं!

इसलिए महामंत्री, हमारे धर्मद्वेषियों को इस बात की गंध आए इससे पूर्व ही मैं इस शरीर को आग के हवाले कर देना चाहता हूँ!'

महामंत्री ने कहा : 'महाराजा, अग्निस्नान करने की कोई आवश्यकता नहीं है... इस पृथ्वी के सिर पर आप राजा हो तब तक ही पृथ्वी सौभाग्यवती है... प्रजा भी तभी तक भाग्यशाली है... आपकी देह कीमती है, राजन्!

महाराजा प्रत्येक नियम का अपवाद होता है... छूट होती है। आपके अहिंसा व्रत के भी अपवाद हैं। आप देवी को पशुओं का बलिदान देंगे तब भी आपका अहिंसा व्रत खंडित नहीं होगा। आत्मरक्षा के लिए प्रतिज्ञा धर्म को छोड़ा भी जा सकता है... शरीर के स्वस्थ होने पर प्रायश्चित करके शुद्धि की जा सकती है। देवी के अति आग्रह से आप पशुओं का बलिदान...'

नहीं महामंत्री...कभी नहीं! आप यह क्या बोल रहे हैं? मैं कभी भी किसी जीव की हिंसा न तो करूँगा... नहीं करवाऊँगा! यह शरीर तो और जन्मों में भी मिल जाएगा... पर मोक्षदायक अहिंसा का व्रत मिलना इतना सरल नहीं है! महामंत्री, शरीर क्षणिक है... दयाधर्म तो शाश्वत है! शरीर के लिए मैं धर्म का त्याग कभी नहीं करुँगा! मैनें जिनेश्वर भगवंतों की पूजा भावपूर्वक की है...हेमचन्द्रसूरिजी जैसे गुरुदेव के चरणों में जीवन अर्पित किया है। और दयामय धर्म का पूरी निष्ठा से पालन किया है। कोई बात मेरे लिए आधी

अधूरी नहीं है। इसलिए जल्दी से जाइये, और पाटन के बाहर लकड़ियों की चित्ता रचाइये... यदि सुबह हो गयी तो बड़ा भारी अनर्थ हो जाएगा!'

महामंत्री ने कहा :

'महाराजा, मैं अल्प समय में ही वापस आता हूँ।' यों कहकर महामंत्री उदयन महल से निकलकर सीधे हेमचन्द्रसूरिजी के उपाश्रय में पहुँचे। गुरुदेव को वंदना की और भारी मन से रात को कुमारपाल के साथ हुई सारी घटना का ब्योरा दिया।

'महामंत्री, राजा की धर्म श्रद्धा बड़ी गजब की है। उसे जल मरने की आवश्यकता नहीं है। तुम एक प्याले में गरम पानी ले आओ।'

गुरुदेव ने उस पानी को अभिमंत्रित किया।

'महामंत्री, तुम जल्दी से राजमहल पर जाओ। इस पानी से राजा के शरीर पर छींटे डालो। राजा का कोढ़ रोग दूर हो जाएगा और उसका शरीर पूर्ववत् निरोगी-स्वस्थ हो जाएगा!'

महामंत्री पानी लेकर शीघ्र ही राजमहल में गये। राजा के कान में कहा : 'गुरुदेव ने यह पानी भेजा है।'

राजा के पूरे शरीर पर पानी छींटा...पानी छींटते ही शरीर निरोगी हो गया... सूर्य के उदित होते ही ज्यों अंधकार तितर-बितर हो जाता है त्यों कोढ़ रोग दूर हो गया!

राजा का हृदय तो अत्यन्त हर्ष से नाच उठा। उसने महामंत्री से कहा :

'महामंत्री, गुरुदेव की शक्ति तो सचमुच ही विस्मित कर दे वैसी है... ऐसे उग्ररोग को भी उन्होंने पलक झपकते मिटा दिया... वह भी दूर बैठे-बैठे भेजे पानी के द्वारा! उस दुष्ट देवी पर तो गुरुदेव की निगाहें गिरे उतनी देर है... उसके क्या हाल होंगे? सचमुच उन महान् गुरुदेव की मुझ पर बड़ी भारी कृपा है। बाघ के जबड़े में से हिरन बच जाए वैसे मैं मोत के मुँह में से बच गया हूँ।'

सबेरा हो गया था।

महामंत्री को बिदा करके कुमारपाल स्नान वगैरह से निवृत्त होकर, गुरुदेव के दर्शन-वंदन करने के लिए निकले।

गुरुदेव के दर्शन करके... गुरुदेव को देखते ही वे भावविभोर हो उठे।

अंग-अंग में रोमांच महसूस करने लगे। हृदय गद्‌गद् हो उठा।

'भगवन्, आज आपने मेरे ऊपर जो उपकार किया है... उस उपकार के लिए तो मैं कुछ कर ही नहीं सकता! मुझे नहीं पता मैं इसका बदला कैसे चुकाऊँगा? आपने मुझे सद्‌बोध देने का जो उपकार किया है... उन उपकारों पर यह उपकार कलश के समान है।

'गुरुदेव, इन सभी उपकारों का बदला मैं आखिर कैसे चुकाऊँगा।' पूनम के चन्द्र की चाँदनी से आपके चरणों को धोऊँ? गोशीर्ष-चंदन के प्रवाह से आपके चरणों पर विलेपन करूँ? देवलोक के नंदनवन के पुष्प लाकर आपके चरणों में चढाऊँ? क्या करूँ? प्रभु! जीवनभर क्या इन सब उपकारों का भार मैं वहन करता ही रहूँगा।'

गुरूदेव के चेहरे पर मधुर स्मित उभर आया। उन्होंने कुमारपाल के सिर पर हाथ रखकर कहा :

'कुमारपाल, मेरे कहने से तू देश में और परदेश में अहिंसा धर्म का अद्‌भुत प्रचार-प्रसार कर रहा है... वह क्या छोटी-मोटी बात है? और फिर... मैंने तेरे ऊपर ऐसे कौन से बड़े भारी उपकार कर डाले हैं कि तू मेरी इतनी प्रशंसा कर रहा है! तेरे श्रेष्ठ पुण्योदय से तेरे कष्ट दूर हुए हैं... तेरी अपूर्व धर्मश्रद्धा से ही तेरे दुःख दूर हुए हैं। मैं तो एक निमित्तमात्र हूँ। घोर आपत्ति और संकट की कड़ी परीक्षा की घड़ियों में भी तूने अपना अहिंसा व्रत सुरक्षित रखा यह कोई कम बात है? ऐसे समय में तो शायद कोई मुनि भी अपने व्रत को न सम्हाल सके!

कुमार, दान की कसौटी तो दरिद्रता में ही होती है। पराक्रम की परीक्षा युद्ध की घड़ियों में होती है। और व्रत की कसौटी प्राणसंकट के समय ही होती है। तूने प्राणसंकट के टूट गिरने पर भी आर्हत् धर्म नहीं छोड़ा है... इसलिए मैं तुझे 'परमार्हत्' का खिताब देता हूँ।'

राजा की आँखें अश्रुपूरित हो उठी।

'मेरे मालिक... मेरे जीवन के सर्वस्व... आप जैसे मेरे परम रक्षक हैं... मैं तो बड़ा ही सौभाग्यशाली हूँ। जनम-जनम तक आपका दास रहूँगा... गुरुदेव!'

गुरुदेव को प्रणाम करके कुमारपाल अपने महल पर गया।

❖ ❖ ❖

१६. जिनमंदिरों का निर्माण

गुरुदेव हेमचन्द्रसूरिजी ने राजा कुमारपाल से एक दिन कहा :

'राजन्, प्राणीमात्र को सुख-कल्याण एवं मुक्ति का मार्ग बतानेवाले जिनेश्वर भगवंतों के मंदिर निर्मित करके इस मनुष्य जीवन का परम कर्तव्य पूरा करना चाहिए।

इतने भव्य...आलीशान... कलात्मक और रमणीय जिनमंदिरों का निर्माण करो कि पहली नजर में देखते ही लोग उन मंदिरों में जाने के लिए लालायित हो उठें! सुन्दर नयनरम्य मूर्तिओं का सर्जन करो ताकि उन प्रतिमाओं के दर्शन करने पर लोगों के मन प्रसन्नता का अनुभव करें, शांति महसूस करें और आनन्द से प्रफुल्ल हो उठें।'

आचार्यश्री ने बड़ा ही समयोचित उपदेश दिया। ऐसे वक्त में राजा के सामने यह प्रस्ताव रखा... जबकि राजा अन्य किसी कार्य में व्यस्त नहीं था। गुरुदेव ने कार्यदिशा बता दी। राजा को कार्य अच्छा भी लगा।

राजा ने मंदिर निर्माण करनेवाले शिल्पशास्त्र के निष्णातों को बुलाकर कहा :

'पाटण शहर के मध्य में एक सुन्दर मंदिर का निर्माण करना है, और उसमें भगवान नेमनाथ की मनोहारी मूर्ति बिराजमान करना हैं।'

मुख्य शिल्पी ने कहा :

'महाराजा, आपके मन को भा जाए... आपकी आँखों को लुभा दे... वैसे जिनालय का निर्माण हम करेंगे।'

'मुझे पसंद आये, इतना ही काफी नहीं होगा... मेरे गुरुदेव को भी पसंद आना चाहिए। उनके मन को भी भाना चाहिए। तुम्हें पता है कि गुरुदेव शिल्पकला में कितनी रुचि रखते हैं? यदि तुम शिल्पशास्त्र के नियमों के मुताबिक निर्माण करोगे तो ही गुरुदेव उसे पसंद करेंगे। हेमचन्द्रसूरिजी तो साक्षात् सरस्वती पुत्र हैं।'

'जी हाँ, हमें पता है, उन महान् ज्ञानी गुरुदेव की ज्ञानोपासना के बारे में। वे शिल्पशास्त्र के भी निष्णात हैं। वे हमारी तारीफ़ करें, हमें धन्यवाद दें, ऐसे जिनमंदिर का निर्माण कर देंगे।'

राजा ने प्रसन्न होकर उसी वक्त अपनी ओर से शिल्पियों को हजारों रुपयें दान दिये। उन्हें प्रोत्साहित किया।

राजा ने मंदिर-निर्माण की पूरी जिम्मेदारी वाग्भट्ट मंत्री को सुपुर्द कर दी। कोषाध्यक्ष को बुलाकर सूचना दी : 'मंदिर के कार्य के लिए वाग्भट्ट मंत्री को जितने रुपये चाहिए उतने दे दिये जाएं। और फिर क्या देरी थी? अतिशीघ्र पूरी तैयारी के साथ मंदिरों के निर्माण का कार्य शुरू हो गया।

नेमनाथ भगवान की सौ इंच की ऊँचाईवाली प्रतिमा बनाने का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया गया।

इधर वर्ष भर में आलीशान, उत्तुंग जिनमंदिर निर्मित हो गया। उधर सुन्दर, मनभावन मूर्ति भी तैयार हो गई। गुरुदेव हेमचन्द्रसूरिजी ने मंदिर में विधिविधान के साथ मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई।

राजा ने उस मंदिर का नाम रखा 'त्रिभुवनपाल चैत्य'। राजा कुमारपाल के पिता का नाम था त्रिभुवननाथ। बड़ा ही उपयुक्त और सूचक नाम रखा गया था। परमात्मा भी तीन भुवन-तीन जगत के पालक माने जाते हैं, उनका चैत्य... उनका मंदिर और त्रिभुवनपाल के रूप में पिता का नाम भी साथ जुड़ गया। प्रथम जिनालय पिता की पुण्य स्मृति का प्रतीक बन गया। प्रजा भी मुक्त मन से राजा की पितृभक्ति की प्रशंसा करने लगी।

❍ ❍ ❍

एक दिन राजा ने गुरुदेव के समक्ष अपने पापों का प्रकाशन करते हुए कहा :

'गुरुदेव! मैंने अपने बत्तीस दाँतों से कई बरसों तक मांसाहार किया है। अभक्ष्य पदार्थ खाये हैं। बहुत पाप किये हैं। प्रभो, आप मुझे प्रायश्चित दीजिए।'

गुरुदेव ने कहा :

'कुमारपाल, पापों से मुक्त होने की तुम्हारी भावना प्रशंसनीय है...। तुम्हें बत्तीस जिनालयों का निर्माण करना चाहिए क्योंकि तुमने बत्तीस दाँतों से मांस चबाया है...।'

राजा ने गुरुदेव के चरणों में मस्तक रखते हुए कहा :

'तहत्ति गुरुदेव। आपका दिया हुआ प्रायश्चित मैं स्वीकार करता हूँ। बड़ी शीघ्रता से ३२ जिनमंदिरों का निर्माण करवाऊँगा। पर ३२ मंदिर कैसे बनाने... इसका पूरा मार्गदर्शन देने की कृपा भी आपको ही करनी होगी।'

गुरुदेव ने कहा :

- दो मंदिर सफेद-धवल पत्थर के बनाने चाहिएँ।

- दो मंदिर काले पत्थर के बनाने चाहिएँ।

- दो मंदिर लाल पत्थर के बनाने चाहिएँ।

- दो मंदिर नीले पत्थर के बनाने चाहिएँ।

- सोलह मंदिर पीले पत्थर के बनाने चाहिएँ।

इन मंदिरों में उसी रंग के पत्थर से निर्मित चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियाँ बिराजमान करनी चाहिएँ।'

राजा को इशारा काफी था। शिल्पियों का पूरा काफिला आ पहुँचा पाटण की धरती पर। चौबीस मंदिर के लिए उपयुक्त जगह पसंद कर ली गई। नक्शा बन गया। खाका रचा गया। इधर खदान में से पत्थर आने लगे। पवित्र मुहूर्त में मंदिरों का निर्माण प्रारम्भ हुआ।

चौबीस मंदिरों में चौबीस तीर्थंकर भगवंतों की प्रतिमाएँ स्थापित हो गईं। तत्पश्चात् चार मंदिर शाश्वत् तीर्थंकरों के बनाये गये।

पहला भगवान ऋषभदेव का, दूसरा चन्द्राननस्वामी का, तीसरा वारिषेण भगवान का, चौथा वर्धमानस्वामी का।

इसके बाद राजा ने चार मंदिर और बनाये। पहले मंदिर में रोहिणी देवी की प्रतिष्ठा की गई। दूसरे मंदिर में श्रुतदेवी सरस्वती की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई। तीसरे मंदिर में सुन्दर अशोकवृक्ष की स्थापना की गई। और चौथे मंदिर में गुरुदेव श्रीहेमचन्द्रसूरिजी की चरणपादुका स्थापित की गई।

इस तरह ३२ जिनमंदिरों का निर्माण करके राजा कुमारपाल ने पाटन की शोभा में तो चार चाँद लगाये ही... अपने पापों का प्रायश्चित भी पूर्ण किया।

❍ ❍ ❍

एक दिन की बात है।

गुरुदेव के चरणों में राजा कुमारपाल बैठे हुए हैं। राजा अपने जीवन की कुछ एक घटनाओं का बयान कर रहे हैं। गुरुदेव शांति से सुन रहे हैं। राजा अपने गर्दिश के दिनों की दास्तान सुनाते हुए एक दुर्घटना याद करते हैं।

'प्रभु, सिद्धराज के सैनिकों से अपने आपको छुपाता हुआ मैं अरावली की पहाड़ियों में भटक रहा था। तारणदेवी के मंदिर के पास घटादार वृक्षों के बीच

बैठा था। काफी थक चुका था। शरीर भी थका हुआ था। दीन-हीन हालत में भिखारी सा हो चुका था। अचानक मैनें एक नजारा देखा... मेरी आँखों में चमक कौंध उठी... मेरी थकान...मेरी उदासी...मायूसी सब दूर हो गये।

पेड़ के पास एक बिल था... उस बिल में से एक चूहा बाहर निकला... उसके मुँह में चाँदी का सिक्का था। उसने वह सिक्का एक जगह पर रखा। वापस बिल में गया... कुछ देर में दूसरा सिक्का लेकर बाहर आया। वह सिक्का भी पहले सिक्के के पास में रखा। वापस बिल में गया... सिक्का लेकर आया... यों उसने बत्तीस सिक्के बाहर लाये और वहाँ रखकर वह नाचने लगा।

मैनें सोचा : 'यह चूहा इन सिक्कों का क्या करेगा? उसे ये सिक्के कुछ काम नहीं लगेंगे... जबकि मेरे इन भूखमरी के दिनों में ये सिक्के वरदान साबित हो जाएंगे। मेरी गरीबी ने मुझे उन सिक्कों को हथियाने के लिए उकसाया। मैनें सोचा कि चूहा जब बिल में जाएगा तब मैं सिक्के ले लूँगा।'

इधर चूहा बिल में गया और मैनें सिक्के उठाकर अपनी कमर में बाँध लिये।

कुछ ही देर बाद चूहा बिल में से निकला... उसने सिक्के देखे नहीं। वह घबराया सा चारों ओर देखने लगा। पेड़ के इर्दगिर्द चक्कर काटने लगा... जब उसे सिक्के दिखाई नहीं दिये तो पागल सा होकर एक पत्थर पर सिर पटक-पटक कर कलपने लगा। मैं देखता रहा और वह चूहा मर गया।

प्रभो, चूहे की मौत ने मेरे दिल को दहला दिया। मुझे लगा... यदि मैंने सिक्के नहीं लिये होते तो अच्छा रहता... पर वह तो ढुले हुए दूध पर दुःखी होने जैसा था।

गुरुदेव, चूहे की हत्या के इस भयंकर पाप का मुझे प्रायश्चित्त दीजिए।'

गुरुदेव ने कहा :

'कुमारपाल, जिस जगह पर चूहा मरा... उसी जगह पर एक भव्य जिनमंदिर का निर्माण करो। यही तुम्हारे लिए प्रायश्चित्त है।'

आज भी अरावली की पहाड़ियों की गोद में 'तारंगा' नामके तीर्थ में वह भव्य जिनालय खड़ा है। उसमें भगवान अजितनाथ की भव्य प्रतिमा बिराजमान है। नौ सौ वर्ष के पश्चात् भी वह मंदिर उस कथा को सुना रहा है।

गुजरात के महामंत्री थे उदयन मेहता। उनके एक पुत्र का नाम था वाग्भट्ट। वाग्भट्ट पराक्रमी थे... शूरवीर योद्धा थे और कुशल सेनापति थे।

राजा कुमारपाल को वाग्भट्ट के प्रति गहरा विश्वास था। अक्सर तो वाग्भट्ट कुमारपाल के अंगरक्षक के रुप में साथ ही रहते थे।

जैसे उदयन मंत्री परमात्मा जिनेश्वर देव के भक्त थे, वैसे ही वाग्भट्ट भी परमात्मा के उपासक थे। वाग्भट्ट ने स्वयं एक सुन्दर जिनालय निर्मित किया था। छोटे पर कलात्मक उस जिनालय में वाग्भट्ट ने चन्द्रकान्तमणि में से निर्मित श्री पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति बिराजमान की थी। नेपाल के राजा ने चन्द्रकान्तमणि वाग्भट्ट को भेंट के रूप में भेजा था। वाग्भट्ट मंत्री ने उस मणि में से मूर्ति का सर्जन किया था।

एक दिन वाग्भट्ट ने राजा कुमारपाल से कहा :

'महाराजा, आपको जब समय की सुविधा हो तब मेरे मंदिर पर पधारने की कृपा करें और भगवान पार्श्वनाथ के दर्शन करें।'

राजा प्रसन्न हो उठा। उसने कहा :

'अवश्य आऊँगा... कल ही आ जाऊँगा।'

दूसरे दिन देवपूजा के विशुद्ध वस्त्र पहनकर, पूजा की सामग्री साथ में लेकर राजा रथ में बैठा और वाग्भट्ट की हवेली पर आये। वाग्भट्ट उन्हें मंदिर में ले गया। कुमारपाल ने दर्शन किये... पूजा की। उन्हें प्रतिमा बहुत अच्छी लगी। उनका मन प्रतिमा में रम गया। दोनों हाथों में प्रतिमा को लेकर अपलक उसे निहारते रहे।

राजा को मूर्ति पसंद आ गई।

उन्होंने वाग्भट्ट के सामने देखा :

'वाग्भट्ट।'

'जी, महाराजा।'

'यह मूर्ति मुझे बेहद पसंद आ गई है।'

'जी महाराजा।'

'यह प्रतिमा तू मुझे दे दे। मैं एक भव्य मंदिर का निर्माण करवाऊँगा। उस मंदिर में इस मूर्ति की प्रतिष्ठा करूँगा।'

'महाराजा, इससे बढ़कर मेरे लिए और खुशी क्या होगी? आप प्रसन्न मन से इस मूर्ति को स्वीकार कीजिए। मुझे भी खुशी होगी।'

राजा ने 'कुमार विहार' नामक शानदार जिनमंदिर बनवाया और उस में

पार्श्वनाथ भगवान की उस प्रतिमा को गुरुदेव श्रीहेमचन्द्रसूरिजी के वरद हस्त से प्रतिष्ठापित किया गया।

❍ ❍ ❍

एक दिन राजा ने गुरुदेव से कहा :

'गुरुदेव, मेरे मन में एक विचार बार-बार कौंध रहा है। खंभात (गुजरात का तत्कालीन बड़ा शहर) में आप से मेरा मिलना हुआ। आपने मेरे प्राणों की रक्षा की। खंभात में आपने मुझे प्रारंभिक व्रत दिये, नियम दिये। इन सबकी स्मृति में एक मंदिर का निर्माण खंभात में करवाना चाहता हूँ।'

'कुमारपाल, खंभात में अलिंग नाम का मुहल्ला है। वहाँ का जिनालय जीर्णशीर्ण हो चुका है... उसका जीर्णोद्धार करवाने की सख्त आवश्यकता है।'

'जैसी आज्ञा, गुरूदेव। वह कार्य शीघ्र ही संपन्न होगा और उसमें रत्नमयी प्रतिमा की स्थापना करवाऊँगा।'

राजा का निर्देश पाकर वाग्भट्ट मंत्री खंभात पहुँचे। अलिंग के मंदिर को देखा। अति जीर्ण मंदिर का उद्धार करवाने के बदले नया ही मंदिर बनवाने का निर्णय किया।

पाटन में राजा कुमारपाल को समाचार भिजवाये। राजा ने सहमति दे दी। मंदिर का निर्माण कार्य तीव्र गति से चालू हो गया। दूसरी ओर मूल्यवान रत्नमयी परमात्मा महावीर स्वामी की प्रतिमा तैयार करवा दी गई।

पूज्य आचार्य भगवंत खंभात पधारे। राजा कुमारपाल भी अपने विशाल राजपरिवार के साथ खंभात आ पहुँचा। उत्सव-महोत्सव के शानदार आयोजन के साथ प्रतिष्ठा का कार्य संपन्न हुआ। जैन धर्म की शान बढ़ी... लोगों के मन में जैनधर्म के प्रति आदर अहोभाग बढ़ने लगा।

❍ ❍ ❍

राजा कुमारपाल ने जितने भी जिनमंदिर निर्मित किये... उन सब में नियमित पुष्प पूजा होती रहे इसके लिए हर एक मंदिर को एक-एक बगीचा भेंट किया। उस बगीचे में होनेवाले विविध रंग, खुशबूवाले फूल परमात्मा के चरणों में अर्पित होने लगे।

कुमारपाल ने अपनी हुकूमत के अठारह प्रदेशों में देवविमान से भव्य एवं रमणीय जिनमंदिर बनवाये और जैनधर्म के प्रसार-प्रचार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

१७. आकाशमार्ग से भरुच में

मंत्री वाग्भट्ट के छोटे भाई थे आम्रभट्ट! राजा कुमारपाल के दिल में जितना स्नेह वाग्भट्ट के लिए था उतना ही अपनत्व आम्रभट्ट के लिए था। आम्रभट्ट लाटप्रदेश (भरुच से सूरत तक का इलाका) के दंडनायक थे।

लाटप्रदेश के लोगों के योगक्षेम की जिम्मेदारी दंडनायक आम्रभट्ट के सिर पर थी। वैसे तो आम्रभट्ट अधिकतर पाटण में ही रहते थे। कुछ ही दिन पूर्व महामंत्री उदयन का स्वर्गवास हुआ था। पिता के अवसान के कारण दोनों पुत्र वाग्भट्ट और आम्रभट्ट व्यथित थे।

उन्हीं दिनों भरुच के कुछ श्रावक पाटन आये और उन्होंने दंडनायक आम्रभट्ट से मिलकर निवेदन किया :

'श्रीमान्, भरुच का 'शकुनिका विहार' नामक जिनमंदिर जहाँ पर श्री मुनिसुव्रतस्वामी बिराजमान हैं... वह अत्यंत जीर्णशीर्ण हो गया है... उसका उद्धार करना अति आवश्यक है।'

आम्रभट्ट ने कहा :

'महानुभाव, आप निश्चिंत रहिए। बहुत जल्द उस मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया जाएगा.'

आम्रभट्ट ने अपने बड़े भाई वाग्भट्ट से परामर्श किया।

'बड़े भैया, पिताजी की तमन्ना थी समड़ी विहार का जीर्णोद्धार करवाने की। शत्रुंजय गिरिराज के ऊपर स्थित भगवान आदिनाथ के मंदिर का जीर्णोद्धार करवाकर आपने पिताजी की एक मनोकामना पूरी की, शकुनिका विहार का जीर्णोद्धार करवाने की इच्छा पूरी करने की आज्ञा मुझे दीजिए... यह पुण्योपार्जन करने का अवसर मुझे प्रदान करें।'

बड़े भाई ने छोटे भाई को इजाजत दी।

राजा कुमारपाल ने भी अनुमति प्रदान की।

आम्रभट्ट का हृदय हर्ष से नाच उठा। वे अपनी धर्मपत्नी को साथ लेकर आये। भरुच में उन्होंने निवास किया। शिल्पियों को बुलाया... उनसे कहा : यह मंदिर तोड़कर इसी जगह पर नया आलीशान जिनालय बनाना है... अति शीघ्र ही कार्य प्रारंभ करना होगा।'

मंदिर के लिए नींव की खुदाई होने लगी। सैंकड़ों मजदूरों ने बहुत गहरे तक नींव के लिए खुदाई की... और एक परेशानी खड़ी हो गई।

भरुच की क्षेत्रदेवी नर्मदा कुपित हो उठी। अदृश्य रहते हुए तीखी जबान में वह बोली :

'इतनी गहराई तक खुदाई करके तुमने मेरा अपमान किया है... इसलिए मैं तुम सब को इसी खड्डे में गाड़ दूँगी।'

मजदूर लोग यह अदृश्य आवाज सुनकर भयभीत हो उठे। वे कुछ सोचे-समझे इससे पहले तो किसी अदृश्य शक्ति का धक्का सा लगा और वे सारे मजदूर खड्डे में नीचे फेंक दिये गये।

पूरे भरुच शहर में इस दुर्घटना के समाचार फैल गये। चारों ओर हाय-तौबा मच गया। हजारों स्त्री-पुरुष दौड़कर आये... नींव के खड्डे में गड़े हुए मजदूरों को देखा... सभी सोचने लगे...

'कैसे इन्हें बाहर निकाला जाए?'

इधर आम्रभट्ट और उनकी पत्नी भी तीव्र वेग से वहाँ आ पहुँचे। वहाँ पर शोकमग्न खड़े प्रमुख शिल्पी से सारी बात का जायजा लिया। उन्होंने गंभीरता से सोचा 'दैवी शक्ति का मुकाबला करना या लड़ाई मोल लेना अक्लमंदी नहीं होगी। नर्मदा देवी को प्रसन्न करके ही रास्ता निकालना होगा। किसी भी कीमत पर इन बेकसूर मजदूरों को बचाना होगा।'

जिस खड्डे में मजदूर गड़े हुए थे... उस खड्डे के किनारे पर खड़ा रहकर उन्होंने बुलंद स्वर में प्रतिज्ञा की :

जब तक मेरे बेगुनाह मजदूर इस खड्डे में से जिन्दे नहीं निकलेंगे तब तक मैं अन्न-जल का त्याग करता हूँ। मैं इसी जगह पर परमात्मा के ध्यान में स्थिर खड़ा रहूँगा। यहाँ से एक कदम भी उठाऊँगा नहीं! यह मेरी प्रतिज्ञा है।'

आम्रभट्ट की घोषणा सुनकर उनकी पत्नी ने भी उसी प्रकार का संकल्प किया और पति के समीप वे भी ध्यानस्थ होकर खड़ी हों गयी।

भरुच की प्रजा इन दोनों पति-पत्नी की अपार करुणा देखकर और कड़ी प्रतिज्ञा सुनकर हक्की-बक्की रह गई। लोगों की बड़ी भारी भीड़ वहाँ जमा होने लगी।

जिसका मन हमेंशा धर्मध्यान में लीन बना रहता है, उस महात्मा के चरणों में देवलोक के देव भी अपना मस्तक झुकाते है।

वैसा ही हुआ। आम्रभट्ट और उसकी पत्नी के धर्मध्यान के प्रभाव से बलात् खिंचकर देवी नर्मदा को वहाँ आना पड़ा। वह प्रगट हुई और बोली :

'दण्डनायक, यदि तुम इस मंदिर का नवनिर्माण करना चाहते हो और तुम्हारे मजदूरों को जिन्दा देखना चाहते हो, तो मुझे बत्तीस लक्षणयुक्त स्त्री-पुरुष के जोड़े का बलिदान देना होगा।'

आम्रभट्ट और उसकी पत्नी ने ध्यान पूर्ण किया। आँखें खोलीं। आम्रभट्ट ने अपनी पत्नी से कहा :

'प्रिये, देवी बलिदान चाहती है... एक दंपती का उसे बलिदान चाहिए।'

पत्नी ने पूछा : 'नाथ, बलिदान देने से सभी मजदूर बच जाएंगे क्या?'

'हाँ, देवी ने वचन दिया है। उसे बलिदान मिलेगा तो वह सभी मजदूरों को जिन्दा बाहर आने देगी और मंदिर का नवनिर्माण होने देगी।'

'फिर आप क्या सोच रहे हैं?' पत्नी ने पूछा।

'यदि तुम तैयार हो तो हम अपना ही बलिदान दें।'

'स्वामिन्, मैं भी यही चाहती हूँ। जिनमंदिर के नवनिर्माण हेतु एवं अनेकों की जिन्दगी को बचाने के लिए यदि हमारा जीवन सार्थक होता हो तो इससे बढ़कर खूबसूरत मौत और कौन सी होगी?'

पत्नी का सत्त्व और शहीद हो जाने की तमन्ना देखकर आम्रभट्ट का रोयाँ-रोयाँ पुलक उठा। आँखों में हर्षाश्रु का दरिया उमड़ आया।

पति-पत्नी दोनों खड्डे में कूद गिरने के लिए तैयार हुए... वहाँ पर खड़े राजपुरुषों ने उन्हें रोका...

'हम आपको इस तरह मरने नहीं देंगे। आपकी जगह पर किसी और के बलिदान की हम व्यवस्था कर लेंगे... पर आप।'

'नहीं... यह कभी नहीं होगा। बलिदान हमें ही देना है। खड्डे में गिरे हुए मजदूरों को बचाने का जिम्मा मेरा है... हमारी जगह पर और किसी का बलिदान कैसे दिया जा सकता है?'

पति-पत्नी ने श्री नवकारमंत्र का स्मरण किया और एक साथ खड्डे में कूद पड़े।

एक दिव्य मधुर आवाज वातावरण में गूँज उठी :

नगर के निवासी लोगों। मैं देवी नर्मदा बोल रही हूँ। आम्रभट्ट और उनकी पत्नी का मनुष्य प्रेम और प्रभु भक्ति देखकर मैं प्रसन्न हो उठी हूँ। इसलिए उन्हें और उनके मजदूरों को नयी जिन्दगी प्रदान करती हूँ। वे सभी इस खड्डे में से जिन्दे... सही-सलामत बाहर आयेंगे।

और सचमुच... खड्डे में से आम्रभट्ट, उनकी पत्नी और मजदूर बाहर आने लगे। सभी भले-चंगे थे... वे सभी प्रसन्न थे... उनके चेहरे पर खुशी थी।

नागरिकों ने हर्ष की किलकारियाँ की। चारों ओर खुशी का शोर मच उठा। जैन धर्म का जयनाद हुआ और महोत्सव रचाए गये।

दण्डनायक आम्रभट्ट ने देवी नर्मदा के चरणों में उत्तम फल नैवेद्य अर्पण करके पूजा की।

मंदिर का निर्माण कार्य तेजी से चला। सैंकड़ो कारीगर और हजारों मजदूर लोग रात-दिन एक करके कार्य करने लगे। दण्डनायक ने उन सब के लिए बढ़िया भोजन वगैरह की व्यवस्था की। हर तरह की सुविधाएँ जुटाई और हजारों रुपये उन्हें देने लगे।

मंदिर का कार्य पूरा हो गया। दण्डनायक ने पाटन जाकर पूज्य गुरुदेव को विनती की 'गुरुदेव, गूर्जरेश्वर के साथ आप भरुच की धरती को पावन कीजिए और नवनिर्मित जिनालय में भगवान मुनिसुव्रत स्वामी की प्रतिष्ठा भी आप ही के वरद हस्त से होगी।'

आचार्यदेव, राजा कुमारपाल और साथ हजारों स्त्री-पुरुषों के संघ ने भरुच की ओर प्रयाण किया। रास्ते में आनेवालें गाँवों के सैंकड़ों स्त्री पुरुष उस संघ में शामिल होने लगे।

'भरुच में 'समड़ी विहार' का जीर्णोद्धार हुआ है... और उस नूतन जिनालय में भगवान मुनिसुव्रत स्वामी की प्रतिष्ठा करवाने के लिए आचार्यदेव और महाराजा कुमारपाल संघ के साथ भरुच पधार रहे हैं।'

पूरे गुजरात में यह समाचार फैल गये।

❍ ❍ ❍

भरूच में प्रभु प्रतिष्ठा का उत्सव रचाया गया।

शुभ मुहूर्त और पावन घड़ी में आचार्यदेव के वरद हाथों २० वें तीर्थंकर

भगवान मुनिसुव्रत स्वामी की जिन प्रतिमा को प्रतिष्ठापित किया गया।

मंदिर के शिखर पर स्वर्णकलश की स्थापना कर के... आम्रभट्ट गीतगान और वाजिंत्रों के नाद के साथ नृत्य करने लगे। भावविभोर होकर... वे नाचने लगे।

मंदिर के शिखर पर से आम्रभट्ट ने सोने और चाँदी के सिक्के बरसाये... क़ीमती वस्त्रों की बारिश की... सच्चे मोती और रत्न उछाले।

राजा कुमारपाल ने आम्रभट्ट से कहा :

'अंबड़, अब तू नीचे आ। भगवान मुनिसुव्रतस्वामी की आरती उतारनी है।'

अंबड़ नीचे उतरा। मंदिर के द्वार पर खड़े द्वार रक्षकों को उसने घोड़े भेंट किये। राजा के साथ उसने मंदिर में प्रवेश किया।

आरती की तैयारी की गई।

पहली आरती राजा कुमारपाल ने स्वयं उतारी।

दूसरी आरती आम्रभट्ट और उसकी पत्नी ने उतारी।

तीसरी आरती आम्रभट्ट की माता पद्मावती ने उतारी।

चौथी आरती आम्रभट्ट की बहनों ने एवं पुत्रों ने उतारी।

पाँचवीं आरती उपस्थित पूरे संघ ने उतारी।

कुमारपाल के साथ आम्रभट्ट मंदिर से बाहर आये। याचकों की कतारें खड़ी थीं, उनकी प्रतीक्षा करती हुई। आम्रभट्ट ने खुले हाथों दान देना प्रारंभ किया। जब सभी सिक्के पूरे हो गये... तब आम्रभट्ट अपने शरीर पर से अलंकार उतारकर देने लगा।

कुमारपाल ने आम्रभट्ट का हाथ पकड़ लिया।

आम्रभट्ट ने राजा के सामने देखते हुए पूछा :

'आप मुझे क्यों रोक रहे हो, मेरे नाथ?'

राजा ने कहा : जब ये आभूषण पूरे हो जाएंगे... तब तू शायद अपना सिर भी उतार कर दान में दे दे। दानशूर व्यक्ति क्या कुछ नहीं दे देते? सब कुछ लुटा देते हैं। इसीलिए मैंने तुझे रोका। मुझे तेरी बहुत जरूरत है अंबड़।' महाराजा कुमारपाल आम्रभट्ट को 'अंबड़' कहकर बुलाते थे... घर में भी सभी उनको 'अंबड़' कहकर ही पुकारते है।

स्तवन, चैत्यवंदन वगैरह धर्मक्रियाएँ पूर्ण होने पर, सभी मंदिरजी के रंग मंडप में आये।

आचार्यदेव ने आम्रभट्ट से कहा :

'इस पृथ्वी पर तुम्हारे जैसे पुरुष जब जन्म लेते हैं... तब कलियुग भी सतयुग बन जाता है। तुमने सूखे हुए दान धर्म के झरने को फिर बहता कर डाला। यह झरना पूरी धरती पर बहता ही रहे... ऐसे सुकृत तुम्हारे हाथों होते ही रहे! मेरा तुम्हें आशीर्वाद है।'

आचार्यदेव ने प्रसन्न मन से आशीर्वाद बरसाये। राजा कुमारपाल ने तो आम्रभट्ट को गले ही लगा लिया। लोगों ने आचार्यदेव के जयजयकार से धरती और आकाश को गुंजारित कर डाला।

❍ ❍ ❍

गुरुदेव और कुमारपाल वगैरह वापस पाटन पहुँच गये। इधर गुरुदेव पाटन पहुँचे और उधर भरुच में आम्रभट्ट को गंभीर बीमारी ने घेर लिया। समझ में न आए वैसी पीड़ा से उनका शरीर टूटने लगा।

- स्नेही, स्वजन और राजपुरुष घबरा उठे।

- वैद्यों ने उत्तम औषध प्रयोग किये... उपचार किये पर सब कुछ व्यर्थ रहा।

- मंत्रविदों ने मंत्र प्रयोग किये पर कुछ फर्क नहीं पड़ा।

- स्नेहीजनों ने तीर्थयात्रा की मनौती रखी।

- वृद्ध स्त्रियों ने गोत्रदेवियों की पूजा अर्चना की। मनौती मानी।

- पूजारियों ने डायन-चुड़ैलों को नैवेद्य चढ़ाये... पूजा-आह्वाहन किया।

फिर भी दण्डनायक का शरीर दिन ब दिन कमजोर हुआ जा रहा था।

दण्डनायक के वयोवृद्धा माता ने देवी पद्मावती की आराधना की। देवी पद्मावती प्रगट हुए। उन्होंने कहा :

'गुरुदेव हेमचन्द्रसूरिजी ही अच्छा कर सकेंगे, यह प्रबल दैवी उपद्रव है। गुरुदेव के बस की ही बात है।'

देवी अदृश्य हो गई।

माता ने दो आदमियों को सारा मामला समझाकर पाटन भिजवाये।

पाटन आकर उन्होंने आचार्यदेव के चरणों में वंदना कर के सारी बात बताई और स्थिति की नजाकत से अवगत करवाया।

आचार्यदेव ने सोचा। मामले की गंभीरता पर विचार किया। भरुच जाने का निर्णय किया।

आचार्यदेव ने, अपने शिष्य यशश्चन्द्र को साथ लेकर आकाशमार्ग से प्रयाण किया। कुछ ही समय में वे भरुच जा पहुँचे।

सीधे ही वे आम्रभट्ट की हवेली पर गये। आम्रभट्ट बेहोश पड़े हुए थे। माता पद्मावती ने आचार्यदेव का स्वागत किया। उन्हें पाट पर बिराजमान होने की प्रार्थना की। आचार्यदेव ने ध्यान लगाया। उन्होंने योगबल के सहारे जान लिया कि यह दैवी उपद्रव है।

ध्यान पूर्ण करके उन्होंने यशश्चन्द्र से कहा : यह सारा उपद्रव व्यंतर देवियों का है। वे मिथ्यादृष्टि हैं। दण्डनायक ने यह मंदिर निर्माण किया... इससे वे क्रुद्ध हैं।

यशश्चन्द्र मंत्रविद्या में पारंगत थे। वे गुरुदेव के इशारे से ही सारा मामला समझ गये।

उन्होंने आम्रभट्ट की माता से कहा :

'आधी रात के समय फल-फूल नैवेद्य वगैरह बलि-पूजा का सामान देकर किसी धीर-वीर पुरुष को हमारे पास उपाश्रय पर भेजना। हम अभी उपाश्रय पर जा रहे हैं।'

आम्रभट्ट की माता ने विनम्रतापूर्वक स्वीकार किया।

गुरुदेव उपाश्रय में पधार गये।

मध्यरात्रि के समय सूचना के मुताबिक बलि-पूजा की थाली सजाकर रणमल नामक हट्टा-कट्टा और निडर आदमी उपाश्रय आ पहुँचा।

गुरुदेव ने यशश्चन्द्र से कहा :

'हमें यहाँ से सीधे ही सेंधवा देवी के मंदिर की ओर चलना है।' रास्ते में क्या करना है... यह बात यशश्चन्द्र को समझा दी।

यशश्चन्द्र ने उस रणमल से कहा :

'मेरे साथ चलना। तनिक भी घबराना मत। निर्भीक होकर चल सकेगा न?'

'अरे महाराज, डर नामक चीज मैनें देखी नहीं है... तुम कहोगे तो कल भूत से भी भिड़ जाऊँगा। मैं राक्षस से डरता नहीं... कि पिशाच से घबराता नहीं... तुम तो निश्चिंत होकर मुझे आज्ञा करते रहना...'

कहते हुए रणमल ने अपना हाथ अपनी तलवार सी मूँछों पर फिराया।

यशश्चन्द्र के चेहरे पर स्मित बिखरा।

नगर के किले का दरवाजा आया।

चौकीदार ने गुरुदेव को देखा। वह गुरुदेव के पैरों में गिरा। यशश्चन्द्र ने इशारे से दरवाजा खोलने के लिए कहा।

चौकीदार ने मुख्य दरवाजे की बड़ी खिड़की खोली। तीनों उसमें से बाहर निकल गये। चौकीदार ने खिड़की बंद की।

बाहर आते ही यशश्चन्द्र ने एक भयानक दृश्य देखा।

❖ ❖ ❖

१८. डायनों को मात दी

बड़ी-बड़ी चिड़ियों का टोला... और अत्यन्त कर्कश आवाज! गुरुदेव आदि तीनों को उस टोले ने घेर लिया। तुरन्त ही यशश्चन्द्र मुनि ने रणमल से कहा : 'बलि-बाकुले (ऊड़द के दाने) उछाल।' रणमल ने दो मुट्ठी भरकर बलि-बाकुले आकाश में उछाले। चिड़ियों का टोला अदृश्य हो गया।

वे आगे बढ़े। कुछ दूर चले और हूप...हूप करते हुए पीले मुँह के बंदरों का हुजूम सामने मिला। बंदर उन्हें घेर ले इससे पहले तो यशश्चन्द्र ने रणमल से कहा :

'रणमल, मेरे हाथ में चावल के दाने दे।' रणमल ने चावल के दाने दिये। यशश्चन्द्र ने उन चावल के दानों को मंत्रित कर बंदरों की ओर फेंके और सभी बंदर वहाँ से आननफानन में नौ-दो-ग्यारह हो गये।

अब वे सैंधवी देवी के मंदिर की ओर तीव्र गति से चलने लगे। मंदिर कुछ ही दूर रहा कि इतने में बड़े-बड़े यमराज के जैसे भयानक बिल्लों का समूह सामने से आता हुआ दिखाई दिया। यशश्चन्द्र ने रणमल से कहा :

'रणमल, लाल रंग के फूल इन बिल्लों पर फेंक।' रणमल ने फूल फेंके और बिल्ले जैसे हवा में गायब हो गये।

देवी के मंदिर के सामने आकर तीनों खड़े रह गये। आचार्यदेव ने देवी के मंदिर के दरवाजे के समक्ष खड़े रहते हुए सूरिमंत्र का ध्यान किया।

यशश्चन्द्र मुनि ने ऊँची आवाज में कहा :

'ओ अज्ञानी देवी, बड़े-बड़े असुर भी जिनके कदमों की धूलि अपने सिर पर रखते हैं, वैसे इन हेमचन्द्रसूरि का स्वागत कर। तेरा महान् पुण्योदय है कि ऐसे लोकोत्तर महापुरुष तेरे अतिथि हुए हैं।'

इतने में अदृश्य रही हुई देवी का अट्टहास सुनाई दिया। धरती काँप उठी। मंदिर थरथरा उठा। परन्तु गुरुशिष्य का रोंया भी फड़का नहीं। रणमल भी चट्टान की भाँति अडिग खड़ा था।

देवी प्रगट हुई। भयंकर रौद्र रूप किया। लंबी-लंबी जीभ लपलपाती हुई, आचार्यदेव के समक्ष नाचने-कूदने लगी।

आचार्यदेव तो ध्यान में लीन थे.... परन्तु यशश्चन्द्र मुनि ने गर्जना करते हुए कहा :

'अरी दुष्टा देवी,.....तू मेरे गुरुदेव का अपमान करती है? मेरी ताकत का तुझे अंदाजा नहीं है क्या? मैं तुम्हें शांति से समझाने की कोशिश कर रहा हूँ, इसका अर्थ तू मेरी कमजोरी मान रही है क्या? क्या तू हमें डरा-धमका रही है? तो अब देख ले मेरा भी चमत्कार।'

यशश्चन्द्र मुनि ने दोनों पैर चौड़े किये... दोनों हाथ कमर पर टिकाये और मुँह में से 'हूँ हूँ हूँ...' करते हुए भीषण सिंहनाद किया।

पूरा मंदिर पत्ते की भाँति हिलने लगा।

दूसरा हूँकार किया और मंदिर में रही हुई तमाम देवियाँ स्तंभित हो गई, जैसे कि चित्र में आलिखित हों।

मुनि ने तीसरा हूँकार किया... और इसी के साथ सैंधवी देवी डर के मारे उछली। उछलकर सीधी आचार्यदेव के पैरों के पास गिरी।

काँपती... थरथराती देवी दोनों हाथ जोड़कर दयार्द्र स्वर में याचना करने लगी... 'मैं आपके चरणों की दासी हूँ। आप जो कहो... जैसा कहो, वह सब करने के लिए तत्पर हूँ।'

यशश्चन्द्र मुनि ने कहा : 'तेरी जिन देवियों ने आम्रभट्ट को सम्मोहित कर के परेशान कर रखा है, उन देवियों के पाश से आम्रभट्ट को मुक्त कर और सूरिदेव की सेवा कर।'

सैंधवी देवी बोली : 'मुनिराज, उन देवियों ने अपनी शक्ति के बल पर आम्रभट्ट के शरीर को भीतर से टुकड़े-टुकड़े कर दिये हैं। अब उन्हें छुड़वाने का क्या मतलब है? छुड़वाने के बाद भी आम्रभट्ट जिन्दा नहीं रहेंगे।'

मुनिराज ने दहाड़ मारी : 'यह तेरा नाटक है... तेरी चालाकी है। पर मैं तेरी चालाकी को भलीभाँति जानता हूँ। जब तक आम्रभट्ट तेरी देवियों के सिकंजे में से मुक्त नहीं होंगे, तब तक तू यहाँ से छूट नहीं सकती।'

सैंधवी देवी घबरा उठी। जैसे कि वह लोहे की जंजीरों में जकड़ा गई हो। और कोई उसे भयानक आरी से छील रहा हो। वैसी घोर वेदना उसके अंग-अंग में दहकने लगी। वह चीखने लगी। चित्कार करने लगी।

इधर यशश्चन्द्र ने सिंहनाद किया।

समूचा भरुच जाग उठा। जैसे कि भूचाल आ गया।

'क्या हुआ? क्या हुआ?' बोलते हुए लोग घर से बाहर निकल आये। घबराहट के मारे सभी व्याकुल हो उठे थे।

आम्रभट्ट के शरीर को घेर रही हुई शाकिनियाँ भी घबरा उठीं। वे सब दौड़ी-दौड़ी सैंधवी देवी के पास आई। वहाँ आते ही यशश्चन्द्र ने उन सभी को मंत्रशक्ति से बाँध दिया। वहाँ से तनिक भी न खिसक सके उस तरह जमीन के साथ चिपका दिया।

यशश्चन्द्र की आवाज कौंधी :

'डायनों, तुम आम्रभट्ट को सताना बंद करो... वर्ना मैं तुम्हें छोड़नेवाला नहीं।'

डायनों के शरीर में एक साथ हजार-हजार भाले चुभते हो वैसी पीड़ा धधकने लगी थी। उनकी आँखों में डर के काले साये तैर रहे थे। यशश्चन्द्र की मंत्रशक्ति के प्रभाव से वे हक्की-बक्की सी रह गई थीं।

यशश्चन्द्र की गरजती हुई आवाज ने उन्हें और आंतकित कर डाला :

'क्या विचार है तुम्हारा? आम्रभट्ट को मुक्त करती हो या नहीं? दिन में तारे गिनवा दूँगा।'

रोती-कलपती हुई डायने कातर स्वर में अनुनय करने लगी : 'मुनिराज...ओ महाराज... हमें माफ कर दो। हम आपके भक्त आम्रभट्ट को छोड़ देंगे, परन्तु पहले आप हमें मुक्त कर दीजिए... दया कीजिए।'

'वाह-वाह। यह कभी नहीं हो सकता। तुम मुझे झांसा दिलाना चाहती हो? मुझे छोटा बच्चा समझ रखा है क्या? पहले आम्रभट्ट को मुक्त करो। तुम्हें इतनी पीड़ा हो रही है तो उस बेचारे बेगुनाह आम्रभट्ट को कितनी पीड़ा महसूस होती होगी। अभी कहता हूँ....मान जाओ...वर्ना यहीं पर नरक की वेदना उठानी होगी... जमीन पर सिर पटक-पटक कर मर जाओगी।'

'नहीं मुनि नहीं, हम से यह पीड़ा सही नहीं जाती। आम्रभट्ट को मुक्त करते हैं। इन आचार्यदेव का शरण स्वीकार करते हैं। कृपा कीजिए... हमें मुक्त कीजिए।'

'अरी डायनों, आम्रभट्ट जैसे परोपकारी पुरुष का तुम्हें रक्षण करना चाहिए या इस कदर भक्षण? तुम्हें जैन धर्म के दया धर्म को मानना होगा। इन गुरुदेव की सेवा करो....जाओ....मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ।'

सभी देवियाँ आचार्यदेव के पैरों में गिरी। सैंधवी देवी आचार्यदेव के कदमों में झुक गई। सभी ने गुरुदेव से जैन धर्म को स्वीकार किया।

सभी देवियाँ अपने-अपने स्थान पर चली गई। इधर तुरन्त ही आम्रभट्ट होश में आये। उनकी सारी पीड़ा शान्त हो गई थी।

यशश्चन्द्र ने रणमल से कहा :

'रणमल, अब ये सारे फल और मिठाई वगैरह सैंधवा देवी को अर्पण कर दो। फिर हम उपाश्रय को चलते हैं।'

रणमल ने देवी के समक्ष चढ़ावे का थाल रख दिया।

आचार्यदेव, यशश्चन्द्र मुनि, रणमल-तीनों सही सलामत उपाश्रय में लौट आये।

रणमल ने यशश्चन्द्र से कहा :

'गुरुदेव, आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए, और ऐसी मंत्रविद्याएँ मुझे सिखाइये... ताकि मैं भी ऐसे परोपकार के कार्य कर सकूँ।'

गुरुदेव ने स्मित बिखेरते हुए उसे आशीर्वाद दिये और वह अपने घर पर गया।

आम्रभट्ट अपनी माता और पत्नी के साथ, सबेरे ही आचार्यदेव के चरणों में वंदना करने के लिए आये, वंदना की। आम्रभट्ट तो गुरुदेव की गोद में सिर रखकर रो पड़े। फफक-फफक कर रोने लगे। गुरुदेव ने आम्रभट्ट के सिर पर अपना हाथ सहलाते हुए कहा : 'अंबड़, शान्त हो... ऐसा तो चलता रहता है, जिन्दगी है,... उतार-चढ़ाव आते-जाते हैं, दैवी उपद्रव शान्त हो गया है।'

'गुरुदेव, मेरे लिए आपको पाटन से इधर तक आने का कष्ट उठाना पड़ा। मेरे लिए आपने कितनी तकलीफ ली। मुझे दुःख इस बात का है।'

'अंबड़, मैं तेरे लिए नहीं आया। तू उदयन महामंत्री का पुत्र है... इसलिए भी नहीं आया हूँ... मैं आया हूँ जिनशासन के एक सुभट की सुरक्षा के लिए। तू मेरे जिनशासन का अजोड़ सैनिक है। दुनिया में जिनशासन का विजयध्वज फहरानेवाला है। अनेक जीवों को अभयदान देनेवाला है। इसलिए मैं आकाशमार्ग से यहाँ पर आया हूँ। अब यहाँ से पदयात्रा विहार करते हुए ही पाटण लौटूँगा।'

आम्रभट्ट की वयोवृद्धा माता पद्मावती ने कहा :

'गुरुदेव, आपने मेरे परिवार पर परम उपकार किया है। यमराज के चंगुल में से मेरे पुत्र को वापस ला दिया है। जनम-जनम तक आपका यह उपकार मैं नहीं भुला सकूँगी।'

आचार्यदेव ने भीगे-भीगे स्वर में कहा :

'माताजी, मैं आपका उपकार कहाँ भूला हूँ? तुमने नन्हें चंगदेव को अपनी गोदी में बिठाकर प्यार से खिलाया है, स्नेह का अमृत पिलाया है। वे दिन आज भी मुझे याद हैं। वे दिन भूले नहीं भुलाते। महामंत्री उदयन तो मेरे लिए पिता तुल्य थे।'

सर्वज्ञ जैसे सूरिदेव के श्रीमुख से ये शब्द सुनकर आम्रभट्ट और उसकी पत्नी तो गद्‌गद् हो उठे। माता पद्‌मावती ने आचार्यदेव के चरणों में मस्तक झुकाया। ने भावविभोर हो उठी थी।

आचार्यदेव ने कहा :

'माताजी, हम आज ही... अभी इस वक्त पाटन के लिए प्रस्थान करेंगे। अब तुम सब निश्चिंत रहना। भगवान मुनिसुव्रत स्वामी की अचिंत्य कृपा तुम सब की रक्षा करेगी।'

राजा कुमारपाल को मालूम नहीं था कि आचार्यदेव पाटन से विहार कर के कहाँ और क्यों गये है? जब आचार्यदेव वापस पाटन पधारे तब कुमारपाल वंदन करने के लिए उपाश्रय में आये। वंदना कर के पूछा :

'गुरुदेव, आप अचानक ही विहार कर के पधार गये? मुझे इत्तिला भी नहीं दी।'

'भरुच से माता पद्‌मावती का संदेश आया था। आम्रभट्ट को दैवी उपद्रव ने परेशान कर रखा था। तुरन्त ही पहुँचना पड़े वैसी आपात् स्थिति थी। इसलिए आकाशमार्ग से भरुच जाना पड़ा।'

शुरू से आखिर तक का किस्सा राजा को सुनाया। कुमारपाल के विस्मय की सीमा नहीं थी।

राजा ने यशश्चन्द्र मुनि के दर्शन किये। टकटकी लगाए उस मंत्रसिद्ध मुनि को निहारता रहा।

गुरुदेव के प्रति राजा के दिल में भक्ति भाव का ज्वार उठा था। ऐसा ज्वार जो कभी उतरनेवाला या अटकनेवाला नहीं था। ऐसे प्रतापी और प्रभावी

गुरुदेव की छत्र-छाया में राजा और प्रजा निर्भय होकर जिएँ,....निश्चिंत होकर रहे,... इसमें आश्चर्य क्या?

कुमारपाल ने गुरुदेव को भावपूर्ण वंदना की।

आम्रभट्ट के भाई वाग्भट्ट भी हर्षविभोर होते हुए गुरुदेव के चरणों में लेट गये।

आचार्यदेव की कीर्ति में चार चाँद लग गये।

चौतरफ आचार्यदेव की आत्मशक्ति, जिनशासन भक्ति व अनुग्रह बुद्धि की भरपूर प्रशंसा हो रही थी।

❖ ❖ ❖

१९. सटीक भविष्यवाणी

गुरुदेव हेमचन्द्रसूरिजी राजा कुमारपाल से कह रहे हैं :

'राजन्, शत्रुंजय तीर्थ का ध्यान करने से हजारों वर्ष के पाप नष्ट होते हैं। उस तीर्थ की यात्रा करने की प्रतिज्ञा लेने से लाखों वर्ष के पाप दूर हो जाते हैं। उस तीर्थ की ओर प्रयाण करने पर आत्मा निर्मल होती है। शत्रुंजय महातीर्थ है।

'परमार्हत्, उस तीर्थक्षेत्र में बिराजमान प्रभु प्रतिमा का दर्शन करने से, पूजन और स्तवन करने से देव होने का पुण्यकर्म उपार्जित होता है। यदि भक्तिभाव तीव्र हो जाता है तो सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। और आत्मा मुक्ति को प्राप्त करती है। इसलिए तीर्थयात्रा करनी चाहिए। तमाम धर्मकार्यो में तीर्थयात्रा श्रेष्ठ है।'

राजा ने सविनय पूछा :

'गुरुदेव, तीर्थयात्रा श्रेष्ठ धर्मकार्य कैसे?'

गुरुदेव ने कहा :

'कुमारपाल, तीर्थयात्रा में अन्य तमाम शुभ कार्य समाविष्ट हो जाते हैं। तीर्थयात्रा के दौरान मनुष्य

- दान देता है... शील का पालन करता है,
- तप करता है, शुभ विचारों में लीन रहता है,
- असत्य नहीं बोलता है, चोरी का त्याग करता है,
- पैदल चलता है और दया का पालन करता है,

इसलिए मैंने तुझे कहा कि तीर्थयात्रा श्रेष्ठ धर्मकार्य है। ऐसा धर्मकार्य करना चाहिए.... करवाना चाहिए....यानी कि हजारों स्त्री-पुरुषों को साथ में लेकर प्रीति-भक्तिपूर्वक तीर्थयात्रा करवानी चाहिए।'

राजा के मन में तीर्थयात्रा की इच्छा पैदा हुई। उसने गुरुदेव से पूछा :

'गुरुदेव, वैसी तीर्थयात्रा में आप भी साथ में पधारोगे न?'

'उस समय जैसा उचित होगा वैसा करेंगे। वैसे तीर्थयात्रा करने की भावना तो हमारी भी है हीं।'

'तब फिर देर काहे की? गुरुदेव, आप कृपा कीजिए और यात्रा के लिए शुभ दिन, शुभ मुहूर्त मुझे दीजिए। उस दिन हम यहाँ से मंगल प्रयाण करेंगे।'

'राजन्, इसके लिए... इस तीर्थयात्रा में साथ पधारने के लिए गुजरात में विहार कर रहे जैनाचार्यों को विनति निमंत्रण भेजना चाहिए। तुम्हारे मित्र राजाओं को एवं आज्ञांकित राजाओं को भी निमन्त्रित करने चाहिए। पाटन व अन्य शहरों के मुख्य श्रेष्ठियों को बुलाने चाहिए। राज्य में ढिंढ़ोरा पिटवा दीजिए कि जिस किसी स्त्री-पुरुष की इच्छा शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा करने की हो... यात्रा के लिए पैदल यात्रा संघ में आने की भावना हो उन सभी को महाराज कुमारपाल की ओर से भावभरा निमंत्रण है।'

- राजा ने निमंत्रण भिजवाये।

- पूरे राज्य में ढिंढ़ोरा पिटवा दिया गया।

- पाटन में जिनभक्ति के महोत्सव आयोजित हुए।

- साधर्मिकों को भोजन के लिए निमंत्रित किये गये।

- कैदखानों में से बंदीजनों को मुक्त कर दिये गये।

- वाग्भट्ट मंत्री और आम्रभट्ट मंत्री के कंधों पर तीर्थयात्रा-संघयात्रा की समूची जिम्मेदारी डाली गई।

- सैंकड़ों रथ और पालकियाँ सजायी गई।

- हजारों हाथी-घोड़ों को सजाया गया।

ज्यों-ज्यों यात्रा के प्रयाण का दिन नजदीक आता गया त्यों-त्यों प्रजाजन एवं राजपरिवार के लोग खुशी से पिघलने लगे। चारों ओर उल्लास व हर्ष का सागर हिलोरें लेने लगा। सर्वत्र हेमचन्द्रसूरि और कुमारपाल के गुणगान होने लगे।

- आमंत्रण मिलते ही राजा आये।

- आमंत्रण मिलने पर श्रेष्ठी आये।

- श्रीमंत आये और गरीब आये।

- पुरुष आये, स्त्रियाँ आई... बच्चे आये।

- पाटन में मानव-सागर जैसे कि हिलोरें मारने लगा।

पर अचानक रंग में भंग पड़ा।

गुप्तचर टुकड़ी ने आकर महाराजा कुमारपाल से, निवेदन करते हुए समाचार दिये :

'महाराजा, राजा कर्ण अपनी विशाल सेना के साथ गुजरात पर आक्रमण करने के लिए चढ़ा आ रहा है। तीन दिन में वह पाटन की सीमा में प्रविष्ट हो जाएगा।'

कुमारपाल ने गुरुदेव का ही मार्गदर्शन लेने का निर्णय किया। यदि वह कर्ण के साथ युद्ध करने के लिए जाए तो तीर्थयात्रा को स्थगित रखना पड़े। तीर्थयात्रा करने का कार्यक्रम जारी रखे तो गुजरात पर आफत की आँधी उतर आये। शायद राजा कर्ण का पंजा गुजरात पर सिकंजा कस ले।

कुमारपाल का मन पशोपश में उलझ गया। कुमारपाल वाग्भट्ट मंत्री को अपने साथ लिए उपाश्रय में गुरुदेव के पास पहुँचे।

गुरुदेव को वंदना कर के कहा :

'गुरुदेव, मैं आप से एकान्त में कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। बात जरा गंभीर है।'

गुरुदेव कुमारपाल को लेकर एक खंड में पधारें।

'गुरूदेव, गुप्तचर लोग अभी-अभी समाचार लाये हैं... कि राजा कर्ण अपनी ताकत में मदहोश होकर गुजरात पर हमला करने दौड़ा आ रहा है। दो-चार दिन में ही वह पाटन के दरवाजे पर दस्तक देगा। यदि हम परसों सबेरे तीर्थयात्रा के लिए यहाँ से प्रयाण करते हैं तो वह राजा मेरे राज्य और राज्य की प्रजा को तहस-नहस कर देगा।

यदि उसके साथ युद्ध करने के लिए जाता हूँ तो संभव है यह युद्ध कुछ दिन खिंच भी जाएँ। चूँकि यह राजा एकाध दिन में पराजित हो सके वैसा नहीं है। उत्तरी भारत का वह राजा है, पराक्रमी है। यदि युद्ध लंबा चले तो तीर्थयात्रा का कार्यक्रम स्थगित करना पड़ेगा। ऐसे में बाहर से... दूर-दूर से आये हुए राजा... श्रेष्ठी... नगरजनों को निराश-हताश होकर लौट जाना पड़े। कुछ समझ में नहीं आता गुरुदेव। यह कैसी बाधा आ पड़ी है? मेरे शुभ मनोरथों के महल पर जैसे कि बिजली टूट गिरी।'

गुरुदेव कुमारपाल की मनोव्यथा आँखें मूँदकर सुनते रहे।

कुमारपाल का स्वर अब भीगने लगा था।

'गुरूदेव, मेरे से तो ये वाग्भट्ट जैसे श्रेष्ठी ज्यादा पुण्यशाली और किस्मतवाले हैं, वे सुखपूर्वक संघयात्रा लेकर जब चाहे तब जा सकते हैं। यात्रा कर सकते हैं, करवा सकते हैं। संघपति का सेहरा पहन सकते हैं। एक मैं ही अभागा हूँ। गुरुदेव, मेरे शुभ मनोरथों का कोमल कल्पवृक्ष जलकर धुआँ-धुआँ हुआ जा रहा है।'

कुमारपाल की आँखों में आँसू छलक आये। गुरूदेव ने आँखें खोलीं... कुमारपाल के सामने देखा। गुरु-शिष्य की निगाहें मिली। गुरुदेव ने मध्यम स्वर में कहा :

'कुमारपाल...स्वस्थ बन जाइये। तीर्थयात्रा के प्रयाण का मूहूर्त अभी ३६ घंटे दूर है। अपना संघ उसी मुहूर्त में प्रयाण करेगा। और इससे पहले आयी हुई विघ्न की बदली तितर-बितर हो जाएगी।'

कुमारपाल ने रूमाल से आँखें पोंछ ली। उन्हें गुरुदेव के वचन पर गहरी श्रद्धा थी। पूरी आस्था थी। गुरूदेव के वचन सुनकर उन्हें आश्चर्य हुआ।

शोक दूर हो गया।

द्विधा नष्ट हो गई।

निराशा चली गई।

परन्तु एक जिज्ञासा... कौतूहलभरी जिज्ञासा को मन-मस्तिष्क में दबाकर राजा और मंत्री महल पर लौट आये।

'कैसे दूर हो जाएगा यह विघ्न? गुरुदेव क्या चमत्कार करेंगे? क्या कर्ण राजा पीछे हट जाएगा? वापस चला जाएगा? गुरुदेव अपने योगबल से नया सैन्य बनाकर कर्ण का सामना करने के लिए भेजेंगे? कर्ण के विचारों में बदलाव आयेगा? गुरुदेव क्या करेंगे?'

परन्तु गुरुदेव से पूछने का तो सवाल ही नहीं था। राह देखनी थी। बारह प्रहर...छत्तीस घंटे के भीतर ही विघ्न टल जाने का था। तब तक धर्म ध्यान करना था। संघप्रयाण की तैयारियाँ चालू रखनी थीं।

आठ प्रहर बीत गये।

प्रभात का समय था। महाराजा महल के झरोखे में बैठे थे। उनका स्वाध्याय चल रहा था। श्री हेमचन्द्रसूरिजी द्वारा संस्कृत भाषा में रचित श्री 'वीतराग स्तोत्र' एवं 'श्री महादेव स्तोत्र' इन दो स्तोत्रों के स्वाध्याय-पठन करने के पश्चात् ही दातून-कुल्ला करते थे।

इतने में महल में गुप्तचरों ने प्रवेश किया। महाराजा को प्रणाम करके निवेदन किया।

'महाराजा, हम राजा कर्ण की सेना में घुस गये थे। गत रात्रि में ही राजा कर्ण ने पाटन को घेर लेने का निर्णय कर लिया था, अतः उन्होंने रात्रि के प्रथम प्रहर में ही पाटन की ओर प्रयाण किया था।

कर्ण अपने श्रेष्ठ हाथी पर बैठा हुआ था। हाथी तीव्र गति से चल रहा था। मध्य रात्रि के समय कर्ण राजा की आँख लग गई। और नींद ही नींद में एक वृक्ष की बड़ी डाली में उसके गले में रहा हुआ हार उलझ गया। हाथी तो चलता रहा... इधर कर्णराजा उस पेड़ की डाली पर लटक गये। उसका हार ही उसकी मौत का कारण हो गया।

कर्णराजा की आकस्मिक मौत ने सभी को स्तब्ध कर दिया। पूरी सेना आगे कूच रोककर विषादमग्न होकर वहीं खड़ी हो गई। सेनापति ने डाली पर लटके हुए राजा के मृतदेह को नीचे उतारा। सभी सैनिकों ने राजा के शव को अंतिम सलामी दी।

वहीं पर लकड़ियों की चिता रचाकर राजा के मृतदेह का अग्नि संस्कार कर दिया गया। सेना वापस लौट गई। राजा के बगैर सेना का जोशोहोश टूट जाना स्वाभाविक था। हम आपको समाचार देने के लिए यहाँ शीघ्र आये हैं।'

समाचार सुनकर राजा कुमारपाल हक्का-बक्का सा रह गया। उसके मुँह से शब्द निकल पड़े...

'गुरुदेव का भविष्य कथन सच साबित हुआ। युद्ध का खतरा टल गया।'

हालाँकि जिस तरह से कर्णराजा की मौत हुई... इससे कुमारपाल दुःखी हो उठे थे। जल्दी-जल्दी तैयार होकर कुमारपाल वाग्भट्ट को साथ लेकर उपाश्रय में पहुँचे।

गुरुदेव को वंदना की। विनयपूर्वक गुरुदेव के चरणों में बैठकर राजा ने सैनिकों के द्वारा आये हुए समाचार कह सुनाये। फिर पूछा :

'गुरुदेव, क्या आपने अपने दिव्य ज्ञान में राजा कर्ण की इतनी खौफनाक-करुण मृत्यु देख ली थी?'

गुरुदेव के चेहरे पर हल्का सा स्मित उमट आया।

हर एक सवाल का जवाब नहीं होता है। गुरुदेव खामोश रहे। उनकी खामोशी में भी गहराई थी।

कुमारपाल और वाग्भट्ट, दोनों गुरुदेव के चरणों में झुक गये। गुरूदेव ने कहा :

'राजन्, दूसरे प्रहर के प्रारंभ में संघयात्रा का प्रयाण करना है। सभी तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं न?'

वाग्भट्ट ने कहा :

'गुरुदेव! सभी तैयारियाँ हो चुकी हैं। नगर में उत्साह का सागर उमड़ रहा है।'

राजा और प्रजा ने गुरुदेव के साथ पैदल चलकर यात्रा की।

पैरों में जूते भी नहीं पहने।

'शत्रुंजय और गिरनार, दोनों महातीर्थों की यात्रा खुद करके, और सभी को करवाकर राजा कुमारपाल अपने आप को धन्यातिधन्य महसूस करने लगे।

❖ ❖ ❖

२०. बादशाह का अपहरण

पाटन जैन संघ की और राजा कुमारपाल की भावपूर्ण विनति को स्वीकार कर के गुरुदेव श्री हेमचन्द्रसूरिजी पाटन में चातुर्मास करने के लिए पधारे थे।

आचार्यदेव ने पहले ही दिन के प्रवचन में कहा :

'चातुर्मास के दौरान श्रावकों को एक ही गाँव नगर में रहना चाहिए। चूँकि बारिश के दिनों में छोटे-बड़े जीव-जन्तु पैदा हो जाते हैं। घर में भी पैदा हो सकते हैं... बाहर रास्तों पर... गीली मिट्टी कीचड़ में तो काफी संभावना रहती है जन्तुओं के पैदा होने की। पैदल चल कर जाने से उन जीव जन्तुओं की हिंसा होने की शक्यता रहती है। तुम्हारे दिल में धर्म का स्थान हो तो... जीवदया का धर्म स्थापित हुआ हो तो चातुर्मास के दौरान मुसाफिरी नहीं करनी चाहिए।'

यह उपदेश सुनकर राजा कुमारपाल ने खड़े होकर... दोनों हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर गुरुदेव से कहा :

'गुरुदेव, मुझे प्रतिज्ञा दीजिए। मैं चातुर्मास के दौरान पाटन से बाहर नहीं जाऊँगा। पाटन में भी मंदिर और उपाश्रय ही जाऊँगा। इसके अलावा कहीं भी घूमने-फिरने नहीं जाऊँगा।'

- राजा ने प्रतिज्ञा ली।

- प्रजाजनों ने भी प्रतिज्ञा ली।

कुमारपाल की ऐसी महान् प्रतिज्ञा की प्रशंसा देश-विदेश में होने लगी। गाँव-गाँव और गली-गली में गुर्जरेश्वर की धर्मप्रियता के गीत गूँजने लगे।

बात को पंख लग गये और बात जा पहुँची ईरान के मुल्क में। ईरान के बादशाह मुहम्मद की बाँछे खिल गई, यह बात सुनकर। कई बरसों से उनका मनसूबा था गुजरात पर आक्रमण करके वहाँ अपना सिक्का जमाने का। पर कोई मौका हाथ नहीं लग रहा था। कुमारपाल सिंह की तरह दहाड़ता हुआ गुजरात की रक्षा के लिए सन्नद्ध था।

मुहम्मद ने सोचा : चातुर्मास के दिनों में गुजरात पर घावा बोल दूँ... ये तो बड़ा ही सुनहरा मौका है। कुमारपाल स्वयं तो युद्ध करने के लिए आएगा नहीं, वह तो पाटन के बाहर भी निकलनेवाला नहीं। और राजा के बगैर की

सेना से निपटना तो कुछ मुश्किल नहीं होगा। बड़ी आसानी से गुजरात पर फतह करने का मेरा सपना साकार हो जाएगा।'

भारी सेना लेकर उसने आनन-फानन में गुजरात की ओर प्रयाण किया। अपने खुफिया दूतों के माध्यम से उसने नजदीक के रास्ते समझ लिए थे।

एक-दो महीने में तो मुहम्मद गुजरात की सीमा पर आ धमका। गुजरात की सीमा पर गुर्जरेश्वर की चौकियाँ थीं। चौकी के रक्षकों ने मुसलमान सेना को उफनते ज्वार की तरह आगे बढ़ते देखा। चारों ओर अफरातफरी का माहौल देखकर दो रक्षक घोड़े पर सवार होकर तीर की तरह भागकर पाटन पहुँचे। राजमहल में जाकर सैनिकों ने राजा कुमारपाल से निवेदन किया।

'महाराजा, मुसलमान बादशाह मुहम्मद भारी सेना लेकर गुजरात की सीमा पर आ धमका है। उन हजारों सैनिको के सामने हम सौ दो सौ रक्षक सैनिक ज्यादा कुछ नहीं कर पायेंगे। उस बादशाह को आगे बढ़ने से रोकना हमारे बस की बात नहीं है।'

'अच्छा किया तुमने... जो मुझे समय रहते समाचार दे दिये। तुम निश्चिंत होकर कर्तव्य निभाना जारी रखो। मैं दूसरी व्यवस्था करता हूँ। चिन्ता मत करना। गुजरात की अस्मिता पर उठनेवाला हाथ या फिरनेवाली आँख सलामत नहीं रहेगी।'

कुमारपाल ने दोनों रक्षक सैनिकों को चिन्तामुक्त करके बिदा किया, पर स्वयं कुमारपाल चिन्ता के चक्रव्यूह में उलझ गये।

'पाटन छोड़कर चातुर्मास में बाहर नहीं जाने की मेरी प्रतिज्ञा है। मैं लड़ाई करने जा नहीं सकता। और मेरी अनुपस्थिति में सेना उस मदांध मुसलमान राजा को नाकाम कर सके वैसे आसार है नहीं। और यदि मुकाबला नहीं करता हूँ तो वह दुष्ट यवनराजा मेरी गूर्जर प्रजा को मार-मार कर लूट लेगा। यह तो संभव ही नहीं हो सकता। तब फिर क्या करना?'

राजा की उलझन बढ़ती चली।

उनकी स्मृतियों के आकाश में गुरुदेव का चन्द्र जैसा चेहरा उभरा। उसी वक्त वे गुरुदेव के पास पहुँचे। गुरुदेव को विधि सहित वंदना की।

'महानुभाव, तुम्हारे चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ उभरी हुई हैं... बात क्या है?' गुरुदेव ने पूछा।

'जी हाँ, आपकी बात सच है, मेरे लिए तो 'एक ओर नदी और दूसरी ओर बाघ वाली' कहावत चरितार्थ हुई है।'

राजा ने सारी बात कही। गुरुदेव ने आँखें मूँदकर शांति से सारी बात सुनी।

बात पूरी हुई।

गुरुदेव ने आँखे खोलीं... राजा के सामने देखा।

'राजन्, चिन्ता छोड़ दीजिए। तुम्हारे दिल में धर्म का वास है तो वह धर्म ही तुम्हारी रक्षा करेगा। तुम्हारे गुजरात की सुरक्षा करेगा। हाँ, तुम्हे एक काम करना होगा।'

'भगवन्, आपकी जो आज्ञा हो, वह मुझे शिरोधार्य है।'

'आज रात को यहाँ मेरे पास रहना है।'

'जी, गुरुदेव। जैसी आपकी आज्ञा।'

राजा ने गुरुदेव के चरणों में वंदना की। वे चिन्तामुक्त हो गये। उन्हें गुरुदेव पर अपार श्रद्धा थी। निश्चिंत होकर वे अपने महल पर लौटे।

पाटन के जिस उपाश्रय में गुरुदेव बिराजमान थे, उस उपाश्रय के बीचोंबीच एक बड़ा खुला चौक था। ऊपर आकाश... नीचे धरती। छत वगैरह नहीं थी उसके ऊपर।

निश्चित समय पर रात में राजा कुमारपाल उपाश्रय में आ पहुँचे। उपाश्रय के चौक के पास ही कुमारपाल गुरुदेव के सामने बैठ गये। गुरुदेव उत्तरदिशा की ओर ध्यान लगाकर बैठे हुए थे। पद्मासनस्थ होकर वे गहरे ध्यान में निमग्न हो गये थे। कुमारपाल की दृष्टि गुरुदेव पर ठहरती, कभी आकाश में चली जाती। चाँदनी रात थी... आकाश में कहीं भी बादलों का नामोंनिशां नहीं था।

दस मिनट... बीस मिनट... ३० मिनट... और आकाश में एक सुन्दर पलंग दिखायी दिया। पलंग धीरे-धीरे उपाश्रय के ऊपर आया। राजा तो मारे आश्चर्य से भौंचक्का रह गया। उनकी आँखें विस्फारित हो उठीं। पलंग धीरे-धीरे उपाश्रय के चौक में उतरा। राजा खड़े हो गये।

पलंग भी बड़ा ही कीमती और सुन्दर था। पलंग में एक सशक्त पुरुष सोया हुआ था। उसके गले में रत्नों का हार था।

गुरुदेव ने अपना ध्यान पूर्ण किया। कुमारपाल ने गुरुदेव के चरण पकड़ लिये। गुरुदेव से पूछा :

'यह कौन व्यक्ति है, गुरुदेव?'

गुरुदेव के चेहरे पर स्मित की बिजली कौंधी।

'कुमार, यह वही बादशाह मुहम्मद है। जिसने गुजरात के साम्राज्य को हड़पने के इरादे से चढ़ाई करने की जुर्रत की है। जिसके कारण तू चिन्ता में डूबा है। यह उसकी छावनी में सोया हुआ था, मैं पलंग के साथ ही... सोये हुए उसे यहाँ ले आया हूँ।'

'पर यह कैसे संभव हो सका, भगवन्?'

'योगशक्ति के सहारे।'

'अद्भुत... अद्भुत...' कुमारपाल का दिल खुशी से किलकारी मार उठा। इतने में तो यवन बादशाह जाग उठा। वह आँखें मसलकर चारों ओर देखने लगा।

'अरे... मेरी छावनी कहाँ चली गई? मेरी सेना कहाँ गई? मैं कहाँ हूँ? मैं कहाँ हूँ? बादशाह बोल उठा। उसने आचार्यदेव और कुमारपाल को देखा... उसने पूछा :

'तुम कौन हो?'

आचार्यदेव ने कहा : 'मुहम्मद... तू पाटन में है... और यह तेरे सामने जो पुरुष खड़ा है... वह गुजरात का पराक्रमी राजा कुमारपाल है।'

कुमारपाल का नाम सुनते ही मुहम्मद के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। वह पलंग पर से नीचे उतर आया... दोनों हाथ जोड़कर... पत्ते की भाँति काँपते हुए कुमारपाल के सामने दयार्द्र निगाहों से देखने लगा।

कुमारपाल मारे क्रोध के बौखला उठा।

'अरे दुष्ट! तू बदइरादे से गुजरात पर चढ़ाई लेकर आया था... परन्तु मेरे इन समर्थ गुरुदेव ने तेरी मनहूस मुरादों पर बरफ का पानी डाल दिया है। वे ही अपनी योगविद्या के बल पर तुझे यहाँ उड़ा लाए हैं। अब तू कभी भी रात में तो क्या दिन में भी गुजरात की ओर नजर उठाने का सपना भी नहीं देखे वैसी सजा मैं तुझे दूँगा। तू अपने खुदा को याद कर ले... अब तेरी कयामत मैं बुला रहा हूँ।'

मुहम्मद के पास शस्त्र नहीं था। न उसका एक भी नौकर या सैनिक उसके पास था... वह असहाय था। उसने करुणामूर्ति गुरुदेव की ओर देखा। उनके चरणों में मुहम्मद ढेर हो गया... गद्‌गद् स्वर में बोला :

'या खुदा... मेरी बड़ी गलती हो गई... मेरा जान बख्श दीजिए, मैं आपका शुक्रगुजार रहूँगा। रहम कीजिए, ओ परवरदिगार।'

गुरुदेव ने कहा : 'बादशाह, तूने पहाड़ सी गलती की है। तुझे कुमारपाल की अतुल ताकत का अंदाजा नहीं है।'

बादशाह बोला : 'मेरे खुदा। मैं कबूल करता हूँ... मेरी गलती! मैंने बहुत भारी गुस्ताखी की है! जिसके सर पर आप जैसे खुदा के नूर का हाथ हो... उसे मुझ-सा मामूली इन्सान कैसे जीत सकता है?'

कुमारपाल ने कहा :

'क्या तूने मेरी प्रचंड सेना का अपूर्व पराक्रम सुना नहीं था। मेरा युद्ध कौशल्य तेरे कानों तक नहीं पहुँचा था क्या?'

'जानता था... सम्राट... पर! तुम चातुर्मास में युद्ध नहीं करने की प्रतिज्ञा किये हो, यह जानकर... मैं चढ़ आया। बिना लड़ाई के गुजरात का वैभवी और समृद्ध राज्य हड़प कर जाने के लालच ने मुझ पर जनून सवार कर दिया था। मुझे माफ कर दीजिए... राजेश्वर! और मुझे अपनी छावनी में वापस भिजवा दीजिए। मेरे सैनिक यदि मुझे और मेरे पलंग को नहीं देखेंगे... वे चिंता के मारे मूढ़ हो जाएंगे।'

कुमारपाल दहाड़ा :

'अरे दुष्ट... क्या मैं तुझे यहाँ से ऐसे ही... जिन्दे जाने दूँगा? तेरे जैसे दुर्जन और नापाक आदमी पर भरोसा करना भी पाप है। अपराधी को सजा मिलनी ही चाहिए। मैं तेरा सीना चीरकर रख दूँगा।' कुमारपाल बादशाह की ओर लपके।

गुरुदेव बोल उठे :

'कुमारपाल, बादशाह ने तेरी शरण ग्रहण की है। तेरे साथ वह दोस्ती करना चाहता है। उसकी हत्या नहीं हो सकती। मैं उसे अभयवचन दे रहा हूँ।'

कुमारपाल ने कहा :

'भगवन्, यह यवनराजा तनिक भी भरोसा करने के काबिल नहीं है। वचन भंग करने में या विश्वासघात करने में ये लोग जरा भी हिचकते नहीं। उपकारी के उपकारों को भूल जाना... इनका पुश्तैनी पेशा है। इन दुष्टों पर दया करना यानी बंदर को मदिरा पिलाना होगा।

गुरुदेव बोले : 'हम बादशाह के मन का परिवर्तन करवाएंगे। राजन्, तुम्हें इससे जो भी कबूलात करवानी हो वह करवा लो। मुझे भरोसा है कि यह उन बातों का अवश्य पालन करेगा।'

कुमारपाल को गुरुदेव की आज्ञा माने ब्रह्मवाक्य! उसने मुहम्मद से कहा :

'बादशाह, यदि तू तेरे देश में साल के छह महीने तक अहिंसा का पालन करने का वचन दे... इन गुरुदेव के पास प्रतिज्ञा लेगा, तो ही मैं तुझे छोड़ूँगा। मेरा यही जीवन ध्येय है... लक्ष्य है... मैं चाहता हूँ कि संसार में कोई प्राणी कभी किसी की हत्या नहीं करे। मुहम्मद, जीवों की रक्षा करना यही सच्चा धर्म है। यदि तू मेरी बात मानेगा... तो तेरा और तेरे देश की प्रजा का कल्याण होगा।

तू यदि अपने मुकाम पर जाना चाहता है... तू यदि रिहाई चाहता है... तो मेरी यह बात तुझे माननी ही होगी। वर्ना तो मेरी जेल की सलाखों के पीछे तुझे जिन्दगी गुजारनी होगी। तेरी जो इच्छा हो... वह बता दे।'

मुहम्मद के लिए और चारा ही कहाँ था? उसने कुमारपाल की बात को स्वीकार किया।

अपने से ज्यादा ताकतवर की हर बात माननी ही होती है। वहाँ और कोई बहाना बनाने से कुछ होता नहीं।

कुमारपाल ने कहा : 'मुहम्मद, अब तू मेरा अतिथि है... मेहमान है... चल मेरे महल पर। तुझे मैं तीन दिन रोकूँगा... हमारी मेहमान-नवाजी तुझे जिन्दगी पर्यन्त याद रहेगी।'

मुहम्मद ने कहा : 'गूर्जरेश्वर, जिन्दगी भर ये गुरुदेव याद रहेंगे! मेरी यह जुर्रअत... मेरी यह गुस्ताखी मुझे हमेशा याद रहेगी। और गूर्जरेश्वर की दया भी हरहमेशा याद रहेगी।'

सबेरे कुमारपाल ने मुहम्मद को अपने ही साथ रथ में बिठाया और राजमहल पर ले गये।

स्नान-भोजन वगैरह दैनिक कृत्यों से निवृत्त होकर कुमारपाल ने मुहम्मद को आचार्य गुरुदेव हेमचन्द्रसूरिजी का परिचय दिया। मुहम्मद तो यह सब सुनकर दंग रह गया।

'गूर्जरेश्वर, जिस मुल्क में ऐसे खुदा के नूर से भरे संत रहते हों... और तुम्हारे जैसे शेर की तरह पराक्रमी राजा राज्य करते हों... उस देश की सुख, संपत्ति और धर्मभावना वृद्धिगत होगी ही। जिस देश में कोई आदमी बालों की जूँ तक को नहीं मार सकता हो... उस देश में राजा की आज्ञा का कितना अद्‌भुत पालन होता है। और तुम से सम्राटराजा, गुरुदेव के चरणों में बैठकर प्रतिदिन उपदेश सुनते हैं, दीन ए जैन की बातें सुनते हो, गुरु की एक-एक बात मानते हो, वैसा तो गुजरात में ही देखा।'

मुहम्मद ने कुमारपाल के साथ काफी बातें कीं। धर्म की बातें कीं और अपनी राजनीति की बातें कीं। तीन दिन मुहम्मद ने गुरुदेव हेमचन्द्रसूरिजी से मुलाकात की। और जैन धर्म का उपदेश सुना।

जाते वक्त मुहम्मद की आँखों में नमी थी। कुमारपाल के अपनत्व से उसका पत्थर दिल मोम की तरह पिघल गया था। उसने गुरुदेव और गुर्जरेश्वर से कहा :'गुरुदेव, मैं अपने राज्य में प्रतिवर्ष छह महीने तक जीवहिंसा नहीं होने दूँगा। आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।'

कुमारपाल ने मुहम्मद को सुन्दर रथ उपहार में दिया। भावभरी बिदाई दी।

साथ में पच्चीस बुद्धिशाली और बलिष्ठ राजपुरुषों को भेजा। उनसे कहा : 'तुम बादशाह के साथ उसके मुल्क तक जाना। वहाँ कुछ दिन रहकर वापस लौटना।'

पाटन में चारों ओर मुहम्मद की चर्चा ही थी लोगों की जबान पर! मुहम्मद के पलंग को देखने के लिए लोगों के झुंड आने लगे।

❖ ❖ ❖

२१. धर्मश्रद्धा के चमत्कार

- **गु**रुदेव के हृदय में जिनेश्वर देव बिराजमान थे।
- गुरुदेव की जिह्वा पर सरस्वती का निवास था।
- गुरुदेव ने अनगिनत ग्रन्थों का सर्जन किया था।
- कई तरह के विषयों पर उन्होंने ग्रन्थ लिखे थे।

गुरुदेव की प्रेरणा से राजा कुमारपाल ने भी संस्कृत भाषा के व्याकरण का अध्ययन किया। संस्कृत भाषा पर प्रभुत्व प्राप्त किया। कुमारपाल ने स्वयं संस्कृत भाषा में काव्यों की रचना की। इतना ही नहीं, गुरूदेव जिस ग्रन्थ का सर्जन करते थे... कुमारपाल सात सौं आलेखको के पास उस ग्रन्थ की सात सौ प्रतियाँ लिखवाकर तैयार करवाते थे।

- उन्होंने सोने की स्याही से ग्रन्थ लिखवाये।
- चाँदी की स्याही से ग्रन्थ लिखवाये।
- और काली स्याही से भी ग्रन्थ लिखवाये।

ग्रन्थ लिखवाने के लिए विशेष तौर पर कश्मीर से कागज मंगवाया जाता था। उन पन्नों को प्रमाणोपेत ढंग से काटा जाता... फिर उस पर चौतरफ सुन्दर चित्रकाम-कलात्मक रेखांकन किया जाता।

आलेखकों के अक्षर यानी मोती के दाने!

गुरुदेव ने हजारों नहीं... लाखों नहीं... करोड़ो श्लोकों की रचना की। और कुमारपाल ने उन सभी श्लोकों को सुन्दर मजबूत कागजों पर लिखवा लिये।

कुमारपाल रोज़ाना सबेरे गुरुदेव की चरण वंदना करने के लिए उपाश्रय में जाते थे। उस समय उन्हें बड़ा ही अद्‌भुत नज़ारा देखने के लिए मिलता था। गुरुदेव अस्खलित रूप में तनिक भी रुकावट या व्यवधान के बिना मधुर स्वर में श्लोक की रचना करते और बोलते रहते थे। गुरुदेव के विद्वान और विश्रुत शिष्य उन श्लोकों को कागज पर उतारते। इधर आलेखक लोग उन श्लोकों को सुन्दर... स्वच्छ अक्षरों में कश्मीरी तालपत्रीय कागज पर लिखते रहते थे।

यह ज्ञानोपासना का महायज्ञ देखकर कुमारपाल का रोयाँ-रोयाँ पुलक उठता था।

उन्होंने इस कार्य की देखभाल के लिए एक निष्ठावान् पुरूष को नियुक्त किया था। वह पुरुष गुरुदेव को जो ग्रन्थ चाहिए वह ग्रन्थ ज्ञानभंडार में से निकाल कर देता था। आलेखकों को कागज देता था... स्याही देता था। आलेखकों के लिए ठहरने की... भोजन वगैरह की सारी व्यवस्था करता था। किसी को तनिक भी तकलीफ न हो इसका खयाल रखता था।

गुरुदेव के साहित्य सर्जन में उनके तीन मुख्य शिष्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहता था। मुनि रामचन्द्र, मुनि गुणचन्द्र, मुनि महेन्द्र। इनके अलावा अन्य शिष्य प्रशिष्य भी नानाविधरुप से गुरुदेव की सर्जनयात्रा में सहयोगी बनते थे।

❍ ❍ ❍

एक दिन की बात है :

महाराजा कुमारपाल दैनंदिन क्रम के मुताबिक सबेरे-सबेरे उपाश्रय में पहुँचे। गुरुदेव को वंदना की...कुशल पृच्छा की। और फिर उपाश्रय में निगाहें डाली... तो चारों ओर खामोशी का वातावरण छाया था। आलेखक कुछ भी लिख नहीं रहे थे। सभी निष्क्रिय बैठे थे।

'गुरुदेव, क्या बात है? आज आपकी वाणी की सरस्वती अवरुद्ध हो गई है? ग्रन्थलेखन का कार्य आज बंद क्यों है? क्या मुसीबत है?'

'राजन्, लिखने के लिए तालपत्र नहीं है।'

'क्या कह रहे है आप? कुमारपाल के राज्य में तालपत्र कम हो गये?' कुमारपाल को धक्का सा लगा। समीप में खड़े व्यवस्थापक से पूछा :

'यह क्या? कागज कम पड़ गये? पर क्यों?'

व्यवस्थापक ने कहा : 'महाराजा, कागज कश्मीर से आते हैं... समय पर कागज नहीं पहुँच पाये हैं, और यहाँ पर तो कश्मीर जैसे कागज मिलते नहीं है।'

महाराजा मौन रहे।

गुरुदेव ने कहा : 'राजन्, चिंता मत कीजिए... एक-दो दिन में कागज आ जाएंगे।'

कुमारपाल ने कहा : 'जब तक कागज न आये तब तक मैं उपवास करूँगा।'

गुरुदेव... अन्य मुनि... आलेखक... व्यवस्थापक... सभी 'नहीं... नहीं...' करते रहे, पर राजा ने प्रतिज्ञा ले ही ली।

कुमारपाल की श्रुतभक्ति पर गुरुदेव का मन प्रसन्न हो उठा। आलेखक भी कुमारपाल की ज्ञानरुचि देखकर दंग रह गये।

कुमारपाल अपने राजमहल पर आये।

उनके मन में विचार आया :

'मुझे कश्मीर के तालपत्र पर ही आधार क्यों रखना चाहिए? क्या यहाँ पाटन में तालपत्र नहीं मिल सकते?'

उन्होंने अपने बगीचे के माली को बुलाया। उससे पूछा :

'माली, यहाँ अपने बगीचे में तालवृक्ष है क्या?'

'महाराजा, तालवृक्ष तो हैं... पर उनके पत्ते इतने अच्छे और साफ सुथरे नहीं होते है।'

'यानी?'

'महाराजा, उन वृक्षों के तालपत्र काम में नहीं आ सकते।'

'ठीक है... तू जा सकता है।'

'माली चला गया। कुमारपाल का मन गहरे सोच में डूब गया।

क्या उन तालपत्रों को अच्छा नहीं बनाया जा सकता? नये तालवृक्ष लगाये जाएँ तो उन्हें तैयार होने में बरसों बीत जाएँगे। नहीं-नहीं... इन्हीं तालवृक्षों के तालपत्रों को सुधारना चाहिए।

वृक्षों के भी अधिष्ठायक देव होते हैं। मैंने सुना है कि कुछ एक वृक्षों पर देवों का, व्यंतर देवों का निवास होता है। उन्हें यदि प्रसन्न किया जाए तो?

- मेरी भावना विशुद्ध है।

- मुझे तो धर्मग्रन्थ लिखवाने हैं।

मेरा मन साफ है... पवित्र है... निर्मल है... मुझे मेरे परमात्मा पर... मेरे गुरुदेव पर... पूर्ण श्रद्धा है... मेरी श्रद्धा पर देवों को प्रसन्न होना ही होगा। मैं बाग में जाऊँ और वृक्ष देवता को प्रसन्न करूँ।'

संध्या के समय कुमारपाल पूजन सामग्री के साथ रथ में बैठकर बगीचे में गये। जहाँ पर तालवृक्ष थे। वहाँ उस जगह पर पहुँचे। नौकर ने जगह को स्वच्छ किया। आसन बिछाया। उस आसन पर बैठकर राजा ने वृक्षपूजा प्रारंभ की। उस वृक्ष पर चंदन का विलेपन किया। कंकू के छींटें डालें। सुगंधयुक्त फूलों की वृष्टि की। फिर दोनों हाथ जोड़कर एकाग्र मन से वृक्ष देवता की प्रार्थना की :

'हे वृक्ष देवता, यदि मुझे जितना प्रेम-स्नेह मेरे स्वयं पर है... उससे भी विशेष प्रेम... विशेष आदर यदि जैन धर्म पर हो तो ये सभी तालवृक्ष सुन्दर हो जाएँ। साफ सुथरे हो जाएँ।'

इस तरह प्रार्थना करके राजा ने अपने गले का सुवर्णहार निकाल कर तालवृक्ष को पहनाया।

राजा रथ में बैठकर राजमहल पर लौट गया।

राजा ने पूरी रात धर्मध्यान में व्यतीत की।

❍ ❍ ❍

सबेरे उपवास का पारणा किये बगैर कुमारपाल गुरुदेव के दर्शन-वंदन करने के लिए उपाश्रय पहुँचे।

दर्शन-वंदन करके वे उपदेश सुनने के लिए बैठे। अन्य स्त्री-पुरुष भी वहाँ पर उपदेश सुनने के लिए एकत्र हो गये थे।

गुरुदेव ने शक्कर सी मीठी जबान में उपदेश का प्रवाह बहाया। इतने में बगीचे के माली ने चेहरे पर अपार प्रसन्नता को छलकाते हुए उपाश्रय में प्रवेश किया। चुपचाप वह भी उपदेश की धारा में बहने लगा।

उपदेश पूरा हुआ।

माली ने महाराजा को प्रणाम करते हुए निवेदन किया।

'महाराजा, आपके द्वारा की हुई वृक्षपूजा फलवती हुई है। मैंने आज सबेरे ही उन तालवृक्षों को देखा। वृक्ष एकदम निरोगी और सुन्दर हो गये हैं। धन्य है आपकी धर्मश्रद्धा को। मैंने तो ऐसा चमत्कार प्रभु, जिन्दगी में पहली बार ही देखा।'

कुमारपाल ने अपने गले की माला निकालकर माली को भेंट दे दी। माली से कहा :

'तू बगीचे में जा। उन तालपत्रों को यहाँ पर ले आ। लाकर इन आलेखकों को दे।'

माली प्रसन्न होता हुआ गया।

गुरुदेव ने सस्मित पूछा... 'क्या बात है यह?'

कुमारपाल ने वृक्षपूजा की बात की। सुनकर गुरुदेव, मुनिवर, आलेखक, उपस्थित स्त्री-पुरूष सभी विस्मित हो उठे।

गुरुदेव ने कहा :

'कुमारपाल, तुम्हारी धर्मश्रद्धा पूर्वक रचे हुए चमत्कार को मुझे प्रत्यक्ष देखना है, चलो, हम तुम्हारे उस बगीचे में चलेंगे।'

सभी बाग में पहुँचे।

जिस तालवृक्ष की राजा ने पूजा की थी। वह तालवृक्ष देखा... अन्य तालवृक्ष देखे। सभी तालवृक्ष एकदम खिल उठे थे। नवपल्लवित हो उठे थे।

ज्यों-ज्यों यह बात पाटन में फैलती गई... त्यों-त्यों लोगों के झुंड बाग में आने लगे, तालवृक्षों को देखने के लिए। चमत्कार को प्रत्यक्ष देखकर सभी राजा के गुण गाने लगे।

गुरुदेव ने उपस्थित समूह को संबोधित करते हुए कहा :

'महानुभाव, यह आर्हत् धर्म का दिव्य प्रभाव है। सूखे हुए... मुरझाये हुए तालवृक्ष नवपल्लवित हो उठे। इसलिए हे भावुक भक्तजनो! तुम्हें भी आर्हत् धर्म का अनुसरण करना चाहिए।'

- कई लोगों ने जैन धर्म को स्वीकार किया।

- महल पर जाकर राजा कुमारपाल ने उपवास का पारणा किया।

❖ ❖ ❖

२२. अपूर्व साधर्मिक उद्धार

आचार्य श्रीहेमचन्द्रसूरीश्वरजी के उपदेश से राजा कुमारपाल ने कई तरह के सत्कार्य किये थे। देश-विदेश में अहिंसा धर्म का प्रसार किया। प्रजा तो पानी छानकर ही पीती थी... पशुओं को भी छानकर ही पानी पिलाया जाता था।

- चौदह हजार नये जिनमंदिर बँधवाये।

- सोलह हजार मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया।

- स्वयं चातुर्मास में नियमित एकाशन करते थे।

- 'मार' वैसा शब्द यदि मुँह में से निकल जाता तो एक उपवास करते थे।

- झूठ बोला जाता तो आयंबिल करते थे।

- सोने-चांदी की स्याही से आगमग्रन्थ लिखवाये। 'त्रिशिष्टिशलाका पुरुष चरित्र' के ३६००० श्लोक लिखवाकर उन ग्रन्थों को हाथी पर रखकर, पाटण में शोभायात्रा निकाली।

- ७०० आलेखकों के पास गुरुदेव के लिखे हुए ग्रन्थों को लिखवाकर देश-परदेश के ज्ञानभण्डारों में रखे।

इतना सब कुछ करने पर भी एक सत्कार्य राजा के ध्यान से बाहर ही रह गया था। गुजरात में लाखों जैन दुःखी और दीन-हीन अवस्था के शिकार थे। उनके दुःखों को मिटाने का विचार राजा कुमारपाल के मन में अभी तक आया नहीं था।

गुरूदेव यह कार्य उस ढंग से करना चाहते थे कि कुमारपाल के दिल पर गहरा असर हो। इसके लिए वे कोई उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

वैसा अवसर आ पहुँचा।

गुरुदेव पाटन पधारनेवाले थे।

राजा ने गुरुदेव के भव्य स्वागत की तैयारियाँ करवाई थीं। राजमार्गों को ध्वजा-पताका से सजाया गया था। जिन रास्तों पर से स्वागतयात्रा गुजरनेवाली थी... उन रास्तों को स्वच्छ किया गया था। मंदिरों में उत्सव रचाये गये थे। गरीबों को भोजन देने का समुचित प्रबंध किया गया था।

स्वागतयात्रा में शामिल होने के लिए कुमारपाल ने अपने अधीनस्थ सैंकड़ो

राजाओं को पाटन में बुलवाया था। आसपास के गाँव-नगर के श्रेष्ठिओं को भी गुरुदेव के प्रवेश उत्सव में भाग लेने के लिए निमंत्रित किया गया था। सभी तैयारियाँ हो चुकी थी।

गुरुदेव, पाटन के निकट के गाँव में पहुँच चुके थे। दूसरे दिन पाटन में प्रवेश करना था।

राजा कुमारपाल, अन्य राजाओं के साथ रथ जोड़कर गुरुदेव को वंदन करने के लिए पास के उस गाँव की ओर चले।

❍ ❍ ❍

एक वृद्ध माँजी ने उपाश्रय में प्रवेश किया। उसकी इच्छा गुरुदेव के दर्शन करने की थी। और गुरुदेव को वस्त्र अर्पण करने की भावना थी।

उसने गुरुदेव को वंदना की। गुरुदेव ने उसे 'धर्मलाभ' के आशीर्वाद दिये।

'गुरुदेव, यह वस्त्र मैंने स्वयं अपने हाथ से बुना है... मुझे आपको यह वस्त्र अर्पित करना है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप स्वयं इस वस्त्र का उपयोग करें।' वृद्धा के शरीर पर के कपड़े उसकी गरीबी को व्यक्त कर रहे थे। उसके ललाट पर केसर का तिलक था। यानी कि वह जैन थी यह स्पष्ट बात थी।

गुरुदेव ने उस वस्त्र को स्वीकार किया।

वृद्धा बड़ी खुश हुई। गुरुदेव की प्रशंसा करती हुई अपने घर पर गई।

गुरुदेव ने वही मोटा और खुरदरा वस्त्र अपने शरीर पर ओढ़ लिया।

'मत्थएण वंदामि' कहते हुए राजा कुमारपाल ने उपाश्रय में प्रवेश किया। उनके कदमों को नापते हुए अन्य राजा भी उपाश्रय में प्रविष्ट हुए।

कुमारपाल ने गुरूदेव को विधिपूर्वक वंदना की।

साथ में रहे हुए राजाओं ने उनका अनुसरण किया।

राजाओं ने गुरुदेव की कुशल पृच्छा की।

गुरुदेव ने प्रसन्न मन से कहा :

'देव-गुरू की कृपा से कुशलता है।'

'सभी राजा विनयपूर्वक गुरुदेव के सामने बैठे। गुरुदेव के साथ वार्तालाप करने लगे। कुमारपाल की निगाहें यकायक गुरुदेव के शरीर पर गई। खुरदरी और मोटी खद्दर की चादर अपने गुरुदेव के शरीर पर देखकर उनके मन में ग्लानि हो आयी।

'गुरुदेव के शरीर पर इतना मोटा और खुरदरा कपड़ा देखकर ये राजा लोग क्या सोच रहे होंगे? सभी राजा जानते हैं कि : ये मेरे गुरूदेव हैं। शायद उन्हें यह मालूम नहीं होगा कि गुरुदेव राजा के घर की भिक्षा, भोजन, कपड़े-पात्र वगैरह कुछ नहीं लेते। वे सोच रहे होंगे गुजरात के इतने बड़े राजा गुरुदेव को अच्छा कपड़ा भी नहीं दे सकते क्या?'

कुमारपाल का मन बेचैन हो गया।

गुरुदेव को खयाल तो आ ही गया।

कुमारपाल ने राजाओं से कहा :

'चलो, अब हम चलें। गुरूदेव का भिक्षा का समय हो गया है। राजाओं ने पुनः गुरुदेव को भावपूर्वक वंदना की। उपाश्रय के बाहर निकल कर रथ में बैठे। कुमारपाल उपाश्रय में खड़े रहे थे। वे गुरुदेव के पास बैठे और विनम्र शब्दों में अपने मन की बात व्यक्त की।

'गुरुदेव, यह वस्त्र आपके शरीर पर अच्छा नहीं लगता। गुजरात के जैनों के पास अच्छे वस्त्र नहीं हैं क्या? कि वे आपको इतने मोटे खुरदरे वस्त्र अर्पण करते हैं?'

गुरुदेव ने कहा :

'राजन्, तुमने कभी अपने हजारों...लाखों...साधार्मिक भाई-बहनों की सार -सम्हाल ली सही? तुम्हारे साधर्मिक कैसे मकान में रहते हैं? कैसे खाना खाते हैं? कैसे कपड़े पहनते हैं? वगैरह जानने की कोशिश की है सही? सुखी और समृद्ध श्रावकों को अपने साधर्मिक भाई-बहनों का खयाल करना ही चाहिए। दुःखी लोगों के दुःख मिटाने चाहिए। तुम्हें कहाँ पता है... ये वस्त्र मुझे अर्पण करनेवाली उस वृद्धा श्राविका के शरीर पर गरीबी का करुण काव्य रचा हुआ था।'

कुमारपाल की आँखें गीली हो उठीं।

गद्-गद् स्वर में उन्होंने कहा :

'गुरुदेव, आपने मेरे ऊपर उपकार करके मुझे कर्तव्य की ओर प्रेरित किया है। मैंने मंदिर बनवाये... ज्ञानभण्डार बनवाये...जीवदया के लिए काफी कुछ किया परन्तु इस कार्य के प्रति लापरवाह रहा। आपने तो अपने उपदेश में कईबार साधर्मिकों के उद्धार के लिए प्रेरणा दी है।'

गुरुदेव, मैं मेरे दुःखी साधर्मिकों का उद्धार करूँगा। गुजरात के एक भी साधर्मिक को दुःखी नहीं रहने दूँगा। कोई साधर्मिक गरीबी का शिकार नहीं रहेगा। साधर्मिकों से कोई कर नहीं लूँगा। और सभी साधर्मिकों का बहुमान भक्ति करूँगा।'

हर्ष से गुरुदेव की आँखें छलछला गई। कुमारपाल ने गुरुदेव के आशीर्वाद लिए...रथ में बैठ कर वे पाटन को लौटे।

- जैनों से मिलनेवाला ७२ लाख सुवर्णमुद्रा का कर माफ कर दिया।

- करोड़ो रुपये खर्च करके लाखों दुःखी जैनों को सुखी बनाये।

- हर साल सभी साधर्मिकों की उत्तम प्रकार से भक्ति की।

इस तरह लाखों जैनों को धर्म में स्थिर किये।

गुजरात के एक-एक जैन के हृदय में गुरुदेव श्रीहेमचन्द्रसूरिजी और कुमारपाल की प्रतिष्ठा हो गई।

❖ ❖ ❖

२३. सच्ची सुवर्णसिद्धि

रात खामोश थी।

अंधेरे की चादर में सिमटे आकाश में असंख्य सितारे मद्धिम-मद्धिम से चमक रहे थे।

उपाश्रय के मध्यभाग में आये हुए चौक के किनारे पर आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजी एक लकड़ी के खंभे का सहारा लेकर बैठे हुए थे। आधी रात बीत चुकी थी। फिर भी आचार्यदेव को नींद नहीं आ रही थी।

उनके मन में अचानक एक विचार कौंध गया था और उसी विचार के कारण उनकी आँखों में नींद का अतापता नहीं था।

विचार था राजा कुमारपाल का! जिस तरह कुमारपाल के दिल में आचार्यदेव बसे हुए थे वैसे ही आचार्य भगवंत के हृदय में कुमारपाल का स्थान था।

'कुमारपाल धर्म के कितने महान् कार्य कर रहा है... उसके अधीन अठारह प्राँतों में उसने अहिंसा का फैलाव किया... उसने हजारों जिनमंदिर बँधवाये... अनेक ज्ञानभण्डार बनवाये... और हजारो-लाखों दुःखी साधर्मिक जैनों को सुखी बनाये।

पर उसकी भी कुछ मर्यादा है ना? राज्य की तिजोरी आज भरी हुई है तो कल खाली भी हो जाती है... उसने कल ही मुझ से कहा था... 'गुरुदेव, कभी पैसों की कमी महसूस होती है...' मैंने पूछा 'गुजरात के राजा को पैसों की कमी?' उसका कहना था...

'जी हाँ... प्रजा के अधिकांश कर माफ कर दिये गये हैं...। जैनों से तो एक पैसे का भी कर नहीं लिया जाता है...। तब पैसे आयेंगे कहाँ से? वह तो परमात्मा की कृपा है कि नगरश्रेष्ठी लोग स्वेच्छया लाखों-लाख रुपये भेंट-सौगात के रुप में दे जाते हैं... और राज्य के खजाने में बेशुमार सोने की ईटें पड़ी हुई हैं... इसलिए इतने सत्कार्य संभव हो सके..., लेकिन अब तो सोना भी काफी काम में आ चुका है...।'

जो बात थी... वह उसने दिल खोलकर कह दी! ऐसे परोपकार परायण राजा के पास यदि अखूट संपत्ति का खजाना हो तो वह दुनिया में न तो किसी को गरीब रहने दे...नहीं किसी को दुःखी! एक भी गाँव जिनालय के बगैर का नहीं हो!'

हेमचन्द्रसूरिजी के पास और तरह-तरह की योगशक्तियाँ थीं... मंत्र साधनाएँ थीं! वे आकाश में उड़ने को शक्तिमान थे। देव-देवी के उपद्रवों को शान्त करना उनके बाँये हाथ का खेल था! कैसी भी हठीली बीमारी दूर करना उनके लिए आसान था... पर लोहे को सोने में तबदील करने की शक्ति उनमें नहीं थी!

दुनिया में, कुदरत के साम्राज्य में कुछ ऐसी वनस्पतियाँ हैं... जिनका रस लोहे के टुकडों पर छिड़का जाए तो लोहा सोना बन सकता है!

जब हेमचन्द्रसूरि छोटे थे... 'सोमचन्द्र' मुनि थे... तब उन्होंने अपने गुरुदेव देवचन्द्रसूरिजी से आग्रह कर के पूछा था...

'गुरुदेव! क्या लोहे को सोने में बदलना शक्य है?' वैसी वनस्पतियाँ आज भी होती हैं क्या? या ये सारी बेसिर-पैर की बातें हैं?' तब गुरूदेव ने, एक दिन...रास्ते पर से गुजर रही एक औरत को देखा... उसके सिर पर लकड़ी का गट्ठर था। वह गट्ठर एक बेल-लता से बंधा था। तुरन्त गुरुदेव ने विश्वस्त श्रावक को भेजकर... वह बेल खरीदवाकर मँगवाई। श्रावक को कहकर बेल का रस निकलवाया। फिर लोहे के छोटे-छोटे टुकड़े मंगवाये। बेल के रस में कुछ औषधियों का मिश्रण करवाया और वह रस लोहे के टुकड़ों पर डाला।

सोमचन्द्र मुनि सांस बाँधे हुए यह प्रयोग देख रहे थे। धीरे-धीरे वे लोहे के टुकड़े सोने में बदल गये! यही सुवर्णसिद्धि थी।

आज की रात वह पुरानी घटना हेमचन्द्रसूरिजी के दिल-दिमाग पर बार-बार उभर रही थी।

यदि गुरुदेव कुमारपाल को 'सुवर्णसिद्धि' दे दें तो? कुमारपाल हजारों टन...लाखों टन सोना बना सकता है और फिर इस धरती पर एक भी इन्सान गरीबी या भूखमरी का शिकार नहीं होगा।

परन्तु गुरुदेव तो खंभात में बिराजते हैं। वे एकांतवास में रहते हैं। उग्र तपश्चर्या करते हैं। संघ का-शासन का कोई अति महत्त्वपूर्ण कार्य हो तो ही वे बाहर आते हैं....। क्या वे मेरी प्रार्थना से पाटन पधारना स्वीकार करेंगे? उन्हें तो राजनीति के छलप्रपंच तनिक भी पसंद नहीं। मेरी भी कुछ प्रवृत्तियाँ उन्हें अच्छी नहीं लगती, हालाँकि मेरी हर प्रवृत्ति जिनशासन की शान बढ़ाने के लिए ही होती है... पर गुरुदेव का अपना अलग दृष्टि कोण है। ठीक है, एक कोशिश करने में तो एतराज नहीं! वाग्भट्ट वगैरह मंत्री वर्ग को खंभात भेजूँ विनति करने के लिए। यदि वे पधार जाएँ... मेरे पर व कुमारपाल पर प्रसन्न हो उठें... और सुवर्णसिद्धि का रहस्य बता दें तो बस। काम सफल हो जाए।'

रात थोड़ी ही अवशेष रही थी। वे निद्राधीन हो गये।

❍ ❍ ❍

'मुनिवर, हम पूज्य गुरुदेव के दर्शन-वंदन के लिए पाटन से आये हैं। आप कृपया गुरुदेव के चरणों में निवेदन करें कि : 'पाटन से वाग्भट्ट वगैरह आये हैं।'

वाग्भट्ट मंत्री अन्य आठ राजपुरूषों को साथ लेकर पाटन से खंभात पहुँचे थे। गुरूदेव देवचन्द्रसूरिजी को हेमचन्द्रसूरिजी का संदेश देने के लिए। उपाश्रय में प्रवेश करके, वहाँ पर बैठे हुए एक मुनि को वंदना करके विनम्रता से उपयुक्त निवेदन किया।

उपाश्रय के एकान्त कमरे में ध्यान-साधना में रत पूज्य गुरुदेव को मुनिवर ने जाकर निवेदन किया।

गुरुदेव ने कहा :

'वाग्भट्ट को कहो कि 'वह यहाँ आ सकता है।'

मुनिराज ने वाग्भट्ट को सूचना दी।

वाग्भट्ट अन्य राजपुरूषों के साथ उस कमरे में गये, जहाँ पर गुरुदेव बिराजित थे। गुरुदेव को भावपूर्वक प्रणाम करके, वंदना करके सविनय उनके चरणों में बैठे।

'गुरुदेव आपके पूज्यदेह में सुखशाता है?'

'देवगुरु की कृपा से सुखशाता है... यहाँ तक आने का विशेष कुछ प्रयोजन?'

'मेरे गुरु हेमचन्द्रसूरिजी का संदेश लेकर आया हूँ।'

'क्या संदेश है महानुभाव?'

'आपको पाटन पधारने के लिए आग्रहभरी विनती है। आप पाटन पधारने की कृपा करें।'

देवचन्द्रसूरि विचारों में खो गये। 'वह मुझे क्यों पाटन बुला रहा है? क्या कोई बहुत बड़ा कार्य आ पड़ा होगा? मेरे वहाँ नहीं होने से संघ का कोई कार्य रुक गया होगा? कोई जटिल समस्या खड़ी हो गई होगी? बड़े और विशेष प्रयोजन के बगैर तो वह मुझे इतनी दूर बुलाएगा नहीं?'

उन्होंने वाग्भट्ट से कहा :

'मंत्री, मैं कल सबेरे ही यहाँ से पाटन के लिए प्रस्थान करने का इरादा रखता हूँ।'

वाग्भट्ट एवं अन्य राजपुरुष खुश हो उठे। उन्होंने गुरुदेव को भावपूर्वक पुनः-पुनः वंदना की एवं वे पिछले पैर कमरे से बाहर निकले।

जल्दी से उन्होंने पाटन की ओर प्रयाण किया। पाटन पहुँच कर गुरुदेव को शुभ समाचार दिये।

गुरुदेव ने कुमारपाल से कहा :

'राजन्, गुरुदेव ने खंभात से विहार कर दिया है... कुछ ही दिनों में वे पाटन पधार जाएँगे।'

'गुरुदेव का मैं भव्य स्वागत करूँगा।'

❍ ❍ ❍

राजा कुमारपाल और पाटन का संघ देवचन्द्रसूरिजी का स्वागत करने के लिए पाटन के बाहर पहुँचे इससे पूर्व तो गुरुदेव बिना किसी पूर्वसूचना के... सब की नजर चुराकर सीधे ही उपाश्रय में आ पहुँचे।

- उन्हें समारोहों में जाना पसंद नहीं था।

- उन्हें मान-सम्मान अच्छे नहीं लगते थे।

हेमचन्द्रसूरिजी ने एक श्रावक को कुमारपाल के पास भेजा और कहलवाया...

'गुरुदेव उपाश्रय में पधार गये हैं।'

राजा और प्रजा... सभी उपाश्रय में आये।

- हेमचन्द्रसूरिजी ने भावपूर्वक गुरुदेव के श्रीचरणों में वंदना की। राजा और प्रजा ने भी वंदना की।

- गुरुदेव ने वहाँ पर सादी-सरल भाषा में, अल्प शब्दों में कुछ देर धर्म का उपदेश दिया। फिर सभा में ही उन्होंने हेमचन्द्रसूरिजी से पूछा :

'कहो... संघ का कौन सा कार्य है?'

हेमचन्द्रसूरिजी ने सभा को विसर्जित की। कुमारपाल के अलावा सभी गृहस्थों को विदा कर के गुरुदेव से कहा :

'गुरुदेव, आप कृपया परदे के पीछे पधारिये, वहाँ पर आपके चरणों में कुछ निवेदन करना है।'

गुरुदेव, हेमचन्द्रसूरिजी और राजा कुमारपाल तीनों परदे के पीछे बैठे। हेमचन्द्रसूरिजी ने गुरुदेव से कहा :

'गुरुदेव, इस परमार्हत् राजा कुमारपाल ने अपने देश में से हिंसा को खदेड़ दिया है। हजारों जिनमंदिर बनाकर अपूर्व पुण्योपार्जन किया है। अब यदि इसे 'सुवर्णसिद्धि' प्राप्त हो जाए तो दुनिया में एक भी व्यक्ति को यह दुःखी नहीं रहने देगा।

गुरुदेव, आपके पास 'सुवर्णसिद्धि' है। मैं जब छोटा था, सोमचन्द्र मुनि था, तब आपने मेरे आग्रह से लोहे के टुकड़े को सोने का टुकड़ा कर के बताया था। आप कुमारपाल पर अनुग्रह कर के उसे वह 'सुवर्णसिद्धि' प्रदान करें... ऐसी मेरी विनती है।'

गुरुदेव देवचन्द्रसूरिजी ने राजा के सामने देखा और कहा :

'राजन्, तेरे पास दो-दो सुवर्णसिद्धियाँ तो हैं... फिर तीसरी सुवर्णसिद्धि की तुझे आवश्यकता ही नहीं है।'

'प्रभु, मेरे पास तो एक भी सुवर्णसिद्धि नहीं है।'

दोनों हाथ जोड़कर... आश्चर्ययुक्त राजा बोल उठा।

'वत्स, है तेरे पास दो सुवर्णसिद्धियाँ।'

'हिंसा का निवारण और जिनमंदिरों का सर्जन।' ये दो श्रेष्ठ सुवर्णसिद्धियाँ तुझे प्राप्त हुई है।'

कुमारपाल का दिल गद्गद् हो उठा गुरुदेव के मुँह से ऐसे आशीर्वचन सुन कर। उन्होंने गुरुदेव के चरणों में मस्तक रखकर वंदना की। हेमचन्द्रसूरिजी ने गुरुदेव से कहा :

'गुरुदेव, आपके पास जो 'सुवर्णसिद्धि' है... मैं उसके बारे में बात कर रहा था।'

'हेमचन्द्र, वह सुवर्णसिद्धि कुमारपाल के भाग्य में नहीं है... न तेरे भाग्य में है। इसलिए मैं तुझे या राजा को सुवर्णसिद्धि नहीं दूँगा। भाग्य के बगैर उत्तम वस्तु मनुष्य के पास टिक नहीं सकती।'

गुरुदेव खड़े हुए।

हेमचन्द्रसूरि और कुमारपाल भी खड़े हो गये।

'हेमचन्द्र अब से ऐसे बिना महत्व के कार्यो के लिए मुझे यहाँ मत बुलाना। मेरी आत्मसाधना में खलल पड़ती है।'

गुरुदेव देवचन्द्रसूरिजी खंभात की ओर विहार कर गये।

❖ ❖ ❖

२४. पाँच प्रसंग

गाँव का नाम था वटादरा।

काना सेठ उस गाँव के बड़े व्यापारी थे।

आचार्यदेव हेमचन्द्रसूरिजी के परिचय से उनके दिल में 'धर्म' का जन्म हुआ था।

काना सेठ ने हजारों रुपये खर्च करके एक सुन्दर सा जिन मंदिर बनवाया। नयनरम्य जिनमूर्ति का निर्माण करवाया। परन्तु जब तक मूर्ति का अंजनविधि न हो तब तक मंदिरजी में प्रतिष्ठा करवाना संभव नहीं।

पाटन में बहुत बड़ा महोत्सव था।

गुरुदेव हेमचन्द्रसूरिजी अनेक प्रतिमाओं का अंजन करनेवाले थे। ये समाचार वटादरा में काना सेठ को मिले। काना सेठ भगवान की मूर्ति को लेकर पाटन पहुँचे।

पाटन जाकर उन्होंने मूर्ति को मुख्य मंदिर में रखी... जहाँ अंजन की विधि चल रही थी।

काना सेठ, अंजन के लिए आवश्यक सामग्री लेने के लिए बाजार में गये। इधर राजा कुमारपाल उसी समय मंदिर में प्रविष्ट हुए।

मंदिर के दरवाजे पर राजा के अंगरक्षक तैनात हो गये। इतने में काना सेठ बाजार से सामग्री लेकर आये। राजा के अंगरक्षकों ने उन्हें भीतर जाने से रोका। काना सेठ ने कहा :

'मुझे मंदिर के अंदर जाने दो। मेरे भगवान की मूर्ति मंदिर में है... और मुझे गुरुदेव से उसका अंजन करवाना है।'

'इस वक्त महाराजा अन्दर हैं... इसलिए तुम अंदर नहीं जा सकते।'

'अरे भैया, मैं वटादरा से आया हूँ... अंजन करने का मुहूर्त यदि बीत गया तो मेरा कार्य लटक जाएगा... मेहरबानी करके मुझे भीतर जाने दो...।'

सैनिकों ने कहा : 'सेठ... समझते क्यों नहीं? एक बार कह दिया कि अभी मंदिर में नहीं जाया जा सकता।'

सेठ ने गिड़गिड़ाते हुए कहा : 'गुरुदेव मुझे पहचानते हैं... उनकी सेवा में इतना ही निवेदन कर दो कि वटादरा से काना श्रावक आया है।'

सैनिकों ने जरा गुस्से में कहा... 'अरे... अभी अंदर तो हम भी नहीं जा सकते। समझे? कड़ा नियम है यहाँ का।'

सेठ निराश होकर बोले...

'मुहूर्त चला जाएगा... मेरा काम नहीं हो सकेगा।' सैनिकों ने कुछ जवाब नहीं दिया।

सेठ मंदिर के चौतरे पर बैठे रहे।

मुहूर्त का समय गुजर गया। महाराजा कुमारपाल मंदिर से बाहर आये। साथ ही गुरुदेव भी रंगमण्डप में पधारे। उन्होंने काना श्रावक को देखा... 'अरे... काना श्रावक। तुम अन्दर क्यों नहीं आये? बाहर क्यों बैठे रहे?' तुम्हारी मूर्ति का अंजन नहीं करवाना था क्या?'

कुमारपाल वहाँ से रवाना हो गये। काना सेठ ने गुरुदेव के चरणों में वंदना करके भर्रायी आवाज में कहा :

'गुरुदेव, मैं बड़ा अभागा हूँ। थोडी देर हो गई और राजा के सैनिकों ने मुझे भीतर आने ही नहीं दिया। मैंने उन्हें बहुत समझाया पर उनके कानों पर जूँ तक रेंगी नहीं... प्रभु... मेरा कार्य अधूरा रह गया।' काना सेठ रो पड़े।

गुरुदेव ने काना सेठ के सिर पर हाथ रखते हुए कहा : 'काना, तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारा कार्य होगा। जरूर होगा। सैनिक बेचारे नौकर आदमी। वे तो राजा की आज्ञा के सामने लाचार! उन्हें तो आज्ञा का पालन करना होता है।'

'गुरुदेव... पर शुभ मुहूर्त तो चला गया?'

'काना, शुभ मुहूर्त चला गया... पर श्रेष्ठमुहूर्त अब आ रहा है। चलो, हम खुले आकाश के नीचे चलें।' काना का हाथ पकड़कर गुरुदेव मंदिर के बाहरी प्रांगण में पधारे।

गुरुदेव ने आकाश में देखा। उन्हें जो नक्षत्र चाहिए था... उसका उदय हो चुका था। उन्होंने काना के सामने देखते हुए कहा :

'काना, ज्योतिषि के दिये हुए मुहूर्त में यदि तुम्हारी मूर्ति को अंजन किया होता तो उसका आयुष्य केवल तीन साल का होता... पर अभी इस वक्त जो नक्षत्र आकाश में है... उस में तुम्हारी मूर्ति को अंजन करने से वह दीर्घ समय तक रहेगी और उसका प्रभाव भी फैलेगा।'

काना सेठ का मन मयूर नाच उठा। उन्होंने गुरुदेव से कहा :

'कृपालु, आप पर मेरी पूर्ण श्रद्धा है... मेरे लिए तो आपका वचन यानी भगवान का वचन! आपकी आज्ञा शिरोधार्य!'

गुरुदेव काना सेठ का हाथ पकड़कर उसे मंदिर में ले गये। पुजारी ने 'अंजन' की सारी तैयारी की। काना सेठ ने लाई सामग्री पुजारी को दे दी।

श्रेष्ठ मुहूर्त में काना सेठ द्वारा निर्मित मूर्ति की अंजन विधि संपन्न हुई। काना सेठ मूर्ति को वटादरा ले गये और बड़ी धूमधाम से मंदिरजी में मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई।

गुरुदेव का भविष्य कथन सही सिद्ध हुआ।

कई बरसों तक मंदिर में वह मूर्ति बिराजमान रही और सैंकड़ो लोगों ने उसका दिव्य प्रभाव अनुभव किया।

❍ ❍ ❍

दूसरा प्रसंग है सोमनाथ पाटन का।

सोमनाथ पाटन में कुमारपाल ने भव्य जिनमंदिर बनवाया था। उस मंदिर में परमात्मा की पूजा वगैरह के लिए 'बृहस्पति' नामक तपस्वी ब्राह्मण को नियुक्त किया था।

बृहस्पति वैसे तो अच्छी तरह मंदिर को सम्हालता था। पर एक दिन अणहिल्लपुर पाटन से आये यात्रिकों के साथ उसकी तू-तू... मैं-मैं हो गई। गलत ढंग से वह वादविवाद पर उतर आया।

उसने जैन धर्म की निंदा की।

ब्राह्मण पद्धति से मंदिर में भगवान की पूजा की।

उस यात्रिक ने यह बात पाटन जाकर आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजी के चरणों में निवेदित की। गुरुदेव ने कुमारपाल का ध्यान बनी हुई घटना की ओर आकृष्ट किया।

कुमारपाल ने शीघ्र ही एक राजपुरूष को सोमनाथ पाटन भेजकर, बृहस्पति को सेवा से निवृत्त करके अन्य पुजारी को नियुक्त कर दिया।

बृहस्पति बेचारा रास्ते पर आ गया। उसे मन ही मन अपनी गलती का अहसास होने लगा। उसने पाटन से आये हुए उसी राजपुरुष से पूछा :

'अब मैं क्या करुँ? कहाँ जाऊँ? मेरी गलती तो बड़ी भारी है?'

'अरे पागल ब्राह्मण! तू सीधा पाटन जा और हेमचन्द्रसूरिजी की सेवा कर। उन्हें प्रसन्न कर। वे प्रसन्न हो जाएँगे तो तुझे वापस इस मंदिर में स्थान मिल जाएगा।'

बृहस्पति पाटन आया।

उसने उपाश्रय में जाकर गुरुदेव को प्रणाम किया।

'गुरुदेव, मैं आपके चरणों की सेवा करने के लिए आया हूँ।'

बृहस्पति तपस्वी तो था ही। उसने चार महीने तपश्चर्या की। गुरुदेव की सेवा की।

गुरुदेव उसे जान गये थे। राजा भी समझ गये थे कि 'यह ब्राह्मण क्यों इस तरह तप और सेवा की धूनी रचाकर बैठा है।'

बृहस्पति ने जैन धर्म के विधि-विधान सीख लिए। मंदिर की पूरी पूजा विधि जान ली। गुरु को वंदना करने की रीत सीख ली। और पच्चक्खाण की विधि भी सीख ली।

बातों-बातों में चार महीने व्यतीत हो गये।

बृहस्पति ने गुरुदेव को विधिपूर्वक वंदना कर के कहा :

'गुरुदेव, आपकी कृपा से मेरा चार महीने का तप निर्विघ्न पूर्ण हुआ है। आज मुझे पारना करने का पच्चक्खाण दीजिए एवं आशीर्वाद दीजिए।'

गुरूदेव के चेहरे पर संतुष्टि और प्रसन्नता के फूल खिल उठे।

उसी वक्त महाराजा कुमारपाल भी उपाश्रय में आ पहुँचे। गुरुदेव को बृहस्पति पर प्रसन्न हुआ देखकर उन्होंने बृहस्पति से कहा :

'तपस्वी ब्राह्मण, तू सोमनाथ पाटन जा। पहले की तरह मैं तेरी वहाँ के मंदिर के पुजारी पद पर स्थापना करता हूँ।'

बृहस्पति प्रसन्न हो उठा। उसकी तपश्चर्या फलवती सिद्ध हुई थी।

वह हेमचन्द्रसूरिजी का भक्त हो गया।

सोमनाथ पाटन के 'कुमार विहार' नामक जिनमंदिर में रहते हुए उसने बरसों तक परमात्मा जिनेश्वर भगवान की भक्तिभाव पूर्वक पूजा की। सेवा एवं उपासना की।

❍ ❍ ❍

पुत्र चंगदेव ने दीक्षा ली।

पति चाचग श्रेष्ठी का देहावसान हुआ।

पाहिनी श्राविका ने दीक्षा ले ली थी। माता पाहिनी साध्वी अपने ज्ञान-ध्यान में लीन थी। अपने कोंखजाए हेमचन्द्रसूरि का अपूर्वज्ञान, अद्‌भुत योगसिद्धि और महान् शासन प्रभावना देखकर माता साध्वी का हृदय अपूर्व प्रसन्नता का अनुभव करता था। आचार्यदेव भी माता साध्वीजी की पूरी सार सम्हाल रखते थे। उनके प्रति भक्तिभाव करते थे।

साध्वी पाहिनी मृत्यु शय्या पर सोयी हुई थी। साध्वीवृंद उन्हें अन्तिम आराधना करवा रहा था। गुरुदेव को समाचार मिले। वे पाटन में ही बिराजमान थे।

अविलम्ब वे माता साध्वीजी के पास पहुँचे। माँ ने बेटे की ओर देखा।

बेटे ने अनहद भक्ति से प्रेरित होकर कहा :

'माताजी, मैं आपको एक करोड़ नवकार का पुण्य दान देता हूँ। आपके लिए एक करोड़ नवकार का मैं जाप करूँगा। आप अनुमोदना करें।'

आचार्यदेव ने पुण्यदान देकर, स्वयं साध्वी माता को श्री नवकार महामंत्र सुनाने लगे।'

साध्वी पाहिनी ने समाधि मृत्यु का वरण किया।

श्रावक संघ ने श्मशान यात्रा की तैयारियाँ की। साध्वीजी के मृतदेह को श्मशान में ले जाने के लिए सुन्दर और कीमती पालकी बनाई गयी। पालकी एक जगह पर रखकर श्रावक समुदाय अन्य तैयारियों में जुट गया। इधर कुछ जैनविरोधी लोगों ने उस पालकी को तोड़ डाला। समाचार पहुँचे हेमचन्द्रसूरि के पास।

यह सुनकर हेमचन्द्रसूरि को काफी गुस्सा आया। वे स्वयं जहाँ पर मृतदेह था, वहाँ पहुँच गये।

श्रावकों से कहा :

'अब तुम्हे तनिक भी डरने की आवश्यकता नहीं है। नई पालकी में माता के मृतदेह को बिराजमान करो। मैं यहीं पर हूँ... देखता हूँ कौन आता है विघ्न डालने के लिए।'

साध्वी पाहिनी की भव्य श्मशान यात्रा निकली। पाटन के हजारों स्त्री-पुरुष श्मशान-यात्रा में शामिल हुए।

अग्निसंस्कार के समय आचार्यदेव स्वयं उपस्थित रहे। उन विरोधी लोगों में इतनी ताकत कहाँ थी कि हेमचन्द्रसूरिजी के सामने खड़े रह सकें या कोई उपद्रव कर सकें।

महाराजा कुमारपाल पाटन में उपस्थित नहीं थे। वे मालवा देश की यात्रा पर थे। उन्हें इस दुर्घटना की जानकारी होने का सवाल ही नहीं था।

आचार्यदेव का दिल खट्टा हो गया था। उन्हें काफी बुरा लगा था। मातासाध्वी के हुए घोर अपमान से वे बौखला उठे थे।

उन्होंने शिष्य समुदाय के साथ मालवा की ओर विहार कर दिया। राजा कुमारपाल उज्जैन में थे। आचार्यदेव उज्जैन पहुँचे।

गुरुदेव ने महामंत्री उदयन को समाचार भिजवाये।

अचानक गुरुदेव का आगमन जानकर उदयन मंत्री सकपका गये। दौड़ते हुए गुरुदेव के पासे आये। गुरूदेव को भावपूर्वक वंदना करके, विनय से बैठे।

महामंत्री ने पूछा : 'गुरुदेव, उग्र विहार करके इतने दूर पधारने का प्रयोजन?'

आचार्यदेव ने कहा :

'मुझे तत्काल... अविलम्ब राजा से मिलना है।' महामंत्री बोले : 'मैं अभी इसी वक्त महाराज को समाचार भिजवाता हूँ।'

गुरुदेव की मुखमुद्रा देखकर महामंत्री ने किसी अमंगल घटना का अनुमान किया। महाराजा को समाचार दिये।

महाराजा ने महामंत्री से कहा :

'गुरुदेव को आदरपूर्वक राजमहल में ले आइये।'

महामंत्री ने गुरुदेव की सेवा में राजा की विनति पेश की। राजमहल में पधारने के लिए साग्रह निमन्त्रण दिया।

आचार्यदेव राजमहल पर पधारे।

राजा ने स्वयं भावपूर्वक गुरुदेव की अगवानी की।

राजा ने विनयपूर्वक पूछा :

'गुरुदेव, आपके पवित्र देह में निरामयता तो है ना?'

आचार्यदेव ने कहा :

'राजन्, जिस राजा के राज्य में साधु-साध्वी के मृतदेह की भी इज्जत न

की जाती हो... मर्यादा नहीं रहती हो... वैसे राज्य में आश्रित रहकर जीना कौन पसन्द करेगा?'

चिन्ता से व्याकुल हो उठे राजा ने पूछा :

'आप यह क्या कह रहे है गुरुदेव? मेरे राज्य में किसी ने आपका अपमान किया है? किसी दुष्ट आदमी ने आप को पीड़ा पहुँचायी है? प्रभु... आप मुझे कहिए... मैं उस पापी को कड़ी सजा करूँगा... परन्तु आप मुझे छोड़कर जाने की बात न करें। मेरा राज्य छोड़कर जाने का न सोचें।'

'राजन्, जिस राजा के राज्य में साध्वी के मृतदेह की मर्यादा का भी खयाल नहीं किया जाता हो... वैसे राज्य में रहना हम पसन्द नहीं करते। वैसे राज्य में हमें क्यों रहना चाहिए? क्या चाहिए हमें? भिक्षावृत्ति से भोजन करते हैं... जीर्ण वस्त्र पहनते हैं... जमीन पर लेट जाते हैं... हमें राजाओं से लेना देना भी क्या है?'

राजा ने गद्गद् स्वर में कहा :

'गुरुदेव, आपको मेरी आवश्यकता नहीं है... परन्तु मुझे आप की अत्यधिक जरूरत है। परलोक का पुण्य-धन कमाने के लिए मैं आप के साथ मित्रता चाहता हूँ। आपका पवित्र सानिध्य चाहता हूँ।'

राजा की नम्रता... सरलता... मैत्री ने आचार्यदेव के दिल को मोम सा मुलायम बना डाला। उन्होंने पाटन में हुई घटना का ब्यान किया। राजा को काफी दुःख हुआ। भविष्य में अब कभी ऐसी दुर्घटना नहीं होगी वैसी निश्चिंतता दी।

'गुरुदेव... आप जब भी चाहें... मेरे महल पर पधार सकते हैं... आपको कोई राजपुरुष या सैनिक न तो रोकेंगे, न... कोई टोकेंगे।'

राजा एवं आचार्य महाराज की मैत्री विशेषरुप से दृढ़ हुई। राजा अक्सर आचार्यदेव के गुणों की प्रशंसा किया करते थे।

❍ ❍ ❍

राजपुरोहित आमित्र के मन में इर्ष्या की आग छुपी-छुपी जल रही थी।

हेमचन्द्रसूरिजी के बढ़ते जाते मान-सम्मान देखकर उसके पेट में तेल गिरने लगा। वह पुरोहित हेमचन्द्रसूरिजी को अपमानित करने की फिकर में घूमने लगा।

एक दिन भरी राजसभा में राजा ने हेमचन्द्रसूरिजी के ब्रह्मचर्य गुण की जी भरकर प्रशंसा की। उस समय मौका पाकर पुरोहित ने अपनी भड़ास निकाली :

'महाराजा, विश्वामित्र, पराशर जैसे ऋषि-मुनि कि जो जंगल में रहते हुए पेड़ के पत्ते और छिलके खाते थे... वे भी अप्सराओं के खूबसूरत शरीर को देखकर तप-जप सब भूल गये थे... सुध-बुध गवाँ बैठे थे... फिर जो साधु दूध-दही-घी वगैरह खाते हैं... और गाँव नगर में लोगों के बीच रहते हैं... वे इन्द्रिय निग्रह कैसे कर सकते हैं?'

इस बात का जवाब आचार्य महाराज ने बड़े ही सटीक ढंग से दिया :

'अरे पुरोहित! हाथी और शूकर का मांस खाने वाला हट्टा-कट्टा सिंह साल में एक बार ही सिंहनी का संग करता है... जबकि जुवार-बाजरी के दाने खाने वाले कबूतर रोजाना सुखभोग करते हैं... इसका क्या कारण है? तनिक हमें भी समझाइये जरा।'

पुरोहित आमित्र बेचारा क्या जवाब देता? वह तो काठ के पुतले सा चुप हो गया। मारे शरम से उसका सिर नीचा हो गया।

❍ ❍ ❍

राजसभा में इर्ष्या से जलनेवालों की कमी नहीं थी।

एक राजपुरुष ने कुमारपाल के कानों में जहर डालते हुए कहा :

'महाराजा, ये जैन लोग सूर्य की पूजा नहीं करते। ये लोग सूर्य को मानते ही नहीं हैं... जबकि सूर्यभगवान तो सभी के मान्य देवता हैं... धरती को धन-धान्य और जीवन देनेवाले हैं...'

महाराजा ने हेमचन्द्रसूरिजी के सामने देखते हुए कहा :

'गुरुदेव, क्या जैन लोग सूर्यपूजा नहीं करते हैं?'

'राजन्, सूर्य तो रोशनी का मूल स्रोत है... हम तो सूर्य के परम उपासक हैं। सूर्य को हृदय में रखते हैं... आपको तो शायद मालूम ही होगा कि सूर्य के अस्त हो जाने पर हम भोजन का त्याग कर देते हैं... अरे। सूर्यभगवान की गैरमौजूदगी में हम पानी की बूँद भी मुँह में नहीं डालते।'

महाराजा ने उस इर्ष्यालु के सामने देखते हुए कहा :

'क्यों रे बेवकूफ। है तेरे पास इस बात का जवाब? या फिर गुरुदेव से जलना ही सीखा है?' उस बेचारे का तो चेहरा ही उतर गया। उसके पास चुप रहने के अलावा अन्य चारा ही नहीं था।

❖ ❖ ❖

२५. गत जनम की बात

एक दिन कुमारपाल ने गुरुदेव से प्रश्न किया :

'गुरुदेव, इस वर्तमान समय में आप ही सर्वज्ञ हो। मेरे प्रश्नों का समाधान मुझे चाहिए। आप देने की महती कृपा करें।'

'पूछो राजन्! मेरे ज्ञान प्रकाश में तुम्हारे प्रश्न का प्रत्युत्तर यदि मुझे मिलेगा तो मैं अवश्य उत्तर दूँगा। तुम्हारे मन का समाधान करने की कोशिश करूँगा।'

'प्रभो, पूर्व जन्म में मैं कौन था?

- सिद्धराज ने मुझे इतना दुःख क्यों दिया?'

- आप एवं महामंत्री उदयन का मेरे उपर इतना प्यार क्यों है? इतना स्नेह किसलिए? विगत जन्म के किसी विशिष्ट संबन्ध के बगैर इस तरह की जानलेवा दुश्मनी या इतनी चाहतभरी मित्रता का होना संभव नहीं है।'

आचार्यदेव ने कहा :

'कुमारपाल, तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए मुझे किसी देव-देवी का सहारा लेना पड़ेगा। उनसे जवाब प्राप्त करके तुम्हें बताऊँगा।'

गुरुदेव को वंदना करके कुमारपाल अपने महल पर गये। गुरुदेव ने एक साधु के साथ सिद्धपुर की ओर प्रयाण किया।

सिद्धपुर की सीमा में सरस्वती नदी के शान्त नीर बहते थे। किनारे पर एक घटादार पेड़ था। उसके नीचे शुद्ध जमीन पर प्रमार्जन करके मुनि ने आसन बिछाया। गुरुदेव ने आसन पर बैठकर मंत्रस्नान करके सूरिमंत्र की आराधना प्रारम्भ की।

तीन दिन तक उपवास और आराधना चलती रही। सेवा में रहे हुए मुनि ने उत्तर साधक बनकर, अप्रमत्त रहते हुए गुरुदेव की सहायता की।

आराधना पूर्ण हुई।

त्रिभुवनस्वामिनी देवी प्रगट हुई। उस ने ध्यानलीन गुरुदेव से पूछा :

'सूरिदेव, मुझे क्यों याद किया?'

आचार्यदेव ने कहा :

'हे देवी, आपके नेत्र दिव्य हैं। आप भूतकाल और भविष्यकाल की बातें

जान सकती हैं। कृपया मुझे राजा कुमारपाल के पूर्वजन्म और आगामी जन्म की बात बताइये।'

देवी ने वहाँ गुरुदेव को कुमारपाल का पूर्वजन्म और आगामी जन्म बताया।

देवी अदृश्य हो गई।

गुरुदेव वापस पाटन लौटे।

तीन दिन के उपवास का पारणा किया। विश्राम किया। स्वस्थ होकर अपने आसन पर बिराजमान हुए।

कुमारपाल ने 'मत्थएण वंदामि' कहते हुए उपाश्रय में प्रवेश किया। गुरुदेव को वंदना करके वे विनयपूर्वक गुरुदेव के चरणों में बैठे। गुरुदेव ने सस्मित धर्मलाभ का आशीर्वाद देते हुए कहा :

'राजन् तुम्हारे सवालों के जवाब मिल गये हैं। देवी त्रिभुवनस्वामिनी ने कृपा की और तुम्हारे प्रश्नों के जवाब दिये।

समीप में बैठे हुए यशश्चन्द्र मुनि ने कहा :

'महाराजा, गुरुदेव ने सरस्वती नदी के किनारे पर बैठकर तीन उपवास किये और सूरिमंत्र की साधना की। तीन दिन और तीन रात अप्रमत्त होकर एक आसन पर बैठकर जाप ध्यान किया।'

कुमारपाल का मन मयूर नाच उठा। वे विभोर होकर बोले :

'गुरुदेव, मेरे सवालों के जवाब लेने के लिए आपने इतनी कठोर साधना की। आपका यह अकारण वात्सल्य ही मुझे भावविभोर बना डालता है।'

कुमारपाल की आँखों में हर्षाश्रु उमड़ आये।

गुरुदेव ने राजा के मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा :

'कुमारपाल, तेरे सवाल के साथ मैं और महामंत्री उदयन भी तो सिमटे हुए हैं। इसलिए प्रत्युत्तर खोजने की उत्कण्ठा तो मेरे मन में भी थी ही। जो उत्तर मुझे देवी से प्राप्त हुए... मैं तुझे कहता हूँ।'

कुमारपाल और अन्य मुनिवर स्वस्थ होकर, एकाग्र बनकर बैठ गये। गुरुदेव ने कथा का प्रारम्भ किया।

'मालवा और गुजरात की सरहद पर एक ऊँचा पहाड़ था। उस पहाड़ की चोटी पर 'नरवीर' नाम का डाकू अपने चुनंदे साथियों के साथ रहता था। वैसे तो वह मेवाड़ के राजा जयकेशी का पुत्र था। पर नरवीर के गलत कार्यों से

दुःखी होकर राजा ने उसे देश निकाला की सजा दे दी थी। उस ने धीरे-धीरे डाकुओं की टोली बनाई। खुद उस टोली का सरदार बना और फिर इर्दगिर्द के गाँवों को जीतकर उसने अपना छोटा सा साम्राज्य ज़मा लिया।

एक दिन मालवे का एक धनवान सौदागर 'धनदत्त' इसी रास्ते से गुजर रहा था। उसके साथ ढेर सारी संपत्ति सैंकड़ों बैलगाड़ियों में भरी हुई थी। प्रत्येक गाड़ी के साथ रक्षक सैनिकों के दस्ते चल रहे थे।

धनदत्त का काफिला ज्यों पर्वत की घाटियों में प्रविष्ट हुआ, नरवीर के गुप्तचरों ने नरवीर को समाचार पहुँचाए। जैसे ही घाटी के बीचों-बीच धनदत्त का काफिला पहुँचा कि अचानक नरवीर और उसके खूंखार साथियों ने धावा बोल दिया। रक्षक सैनिकों को मार भगाकर सारी संपत्ति को हथिया लिया। धनदत्त स्वयं अंधेरे की ओट में नौ-दो-ग्यारह हो गया। वह उस इलाके से काफी दूर जा पहुँचा। एक पेड़ की छाया में बैठकर सोचने लगा। 'इस दुष्ट लुटेरे को यदि कैद न किया गया तो यह अनेक मुसाफिरों की जान लेगा। लूट मचाता ही रहेगा। मैं किसी राजा की सहायता लेकर इस के दाँत खट्टे कर दूँ। यह भी याद करेगा कि सेर के सिर पर सवा सेर होता ही है।'

धनदत्त जैसे पैसे कमाने में होशियार था... वैसे ही उसने युद्ध करने की कला भी सीखी थी। वह सीधा गया मालवे के राजा के पास। राजा से मिलकर सारी बात बताई। अपनी तबाही का ब्यान किया और कहा कि 'यदि आप मुझे कुछ सैनिक दस्ते दें तो मैं कसम खाता हूँ कि उस डाकू के पाँव आपके इलाके से उखाड़ फेकूँगा।' राजा भी नरवीर के आतंक से परेशान तो था ही। उसने धनदत्त की बात को ध्यान से सुना, और उसने अपने चुने हुए सैनिकों के दस्ते धनदत्त को दिये। उसकी फतह की कामना की।

सैनिकों को साथ लेकर धनदत्त नरवीर के इलाके के निकट पहुँच गया। उसने बड़ी चालाकी से सारी योजना बनाई। सैनिकों के सहारे चारों ओर से नरवीर के अड्डे को घेर लिया और नरवीर को बाहर निकलने के लिए ललकारा। नरवीर अपने बाँके साथियों के साथ धनदत्त से भिड़ गया। बड़ी बहादुरी से उसने धनदत्त का सामना किया पर धनदत्त के पास सशस्त्र सैनिकों की अनुभवी फौज थी। कुछ घंटों की लड़ाई के अन्त में धनदत्त और उसकी सेना ने नरवीर के तमाम साथियों का सफाया कर दिया। उसके अड्डे को तहसनहस किया। नरवीर अपनी गर्भवती पत्नी को लेकर वहाँ से भाग निकला। नरवीर दौड़ रहा था... पीछे उसकी पत्नी भारी कदमों से चल रही

थी। नरवीर तो ओझल हो गया... पर नरवीर की पत्नी को धनदत्त ने घेर लिया। तलवार का प्रहर करके बड़ी क्रूरता से उसने उसके पेट को चीर दिया... उसके अजन्मा शिशु जो गर्भरूप में था... को पत्थर की चट्टान पर पटक-पटककर मार डाला। नरवीर की हवेली को आग लगा दी।

उसने बदला लेकर अपने आप को बहादुर माना। नरवीर के अड्डे में से ढेर सारी धन संपत्ति लेकर, बैलगाड़ियों में भरकर वह वापस गया। मालवे के राजा के पास जाकर अपनी बहादुरी की प्रशंसा करते हुए लड़ाई का ब्यान किया। नरवीर की गर्भवती पत्नी को कैसे मारा, गर्भस्थ शिशु की कैसे हत्या की, वह भी कह दिया... अपनी ताकत की प्रशंसा करते हुए।

राजा दयालु था। वह काँप उठा। सिंहासन पर से खड़े होकर राजा ने धनदत्त से कहा :

'अरे दुष्ट व्यापारी, तू भयंकर निर्दय आदमी है। तेरी दुश्मनी थी नरवीर से, और तूने उसकी निर्दोष औरत और अभी जिसका जन्म भी नहीं हुआ था... वैसे गर्भस्थ शिशु की क्रूरतापूर्ण हत्या कर दी? बहशीपन की भी हद होती है। ऐसा पाप तो क्रूर चंडाल भी नहीं करेगा। तू यहाँ से इसी वक्त चला जा अपना काला मुँह लेकर। फिर कभी इधर का रुख भी मत करना।'

राजा ने धनदत्त का सारा धन जब्त कर लिया। उसे दुत्कार कर देशनिकाला की सजा सुनाई। धनदत्त अकेला - भटकता हुआ एक जंगल में जा पहुँचा। उसके मन में अपने किये हुए घोर पापों का तीव्र पश्चाताप ज़गा। उसने उग्र तपश्चर्या की। उसकी मृत्यु हुई। धनदत्त की आत्मा ने ही सिद्धराज के रूप में जन्म लिया। गर्भस्थ शिशु की हत्या के पाप ने उसे गुजरात का सम्राट होते हुए भी निःसन्तान रखा।

❍ ❍ ❍

एक ध्यान से सुन रहे राजा कुमारपाल की उत्सुकता मुखर हो उठी :

'प्रभो, फिर उस डाकू नरवीर का क्या हुआ?'

'आचार्यदेव ने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा :

वह नरवीर थका हारा एक पेड़ के नीचे बैठकर सोच में डूब गया। उसके दिल में बदले की आग धधक रही थी। गुस्से का लावा उफन रहा था। पर वह बेबस था। उस का एक भी साथी जिन्दा नहीं रहा था। उसकी प्राण प्यारी पत्नी और उसका अजन्मा बच्चा... जिसकी किस्मत में दुनिया को देखना भी

नहीं लिखा था... उससे हमेशा-हमेशा के लिए बिछुड़ गये थे। नरवीर सोच-सोचकर पागल हुआ जा रहा था। उसी जंगल में से साधुओं का एक समूह गुजर रहा था। उस मुनिवृंद के नायक थे आचार्य श्री यशोभद्रसूरिजी। उन्होंने नरवीर को देखा। उसके चेहरे को ही नहीं - उसकी आत्मा को भी देखा। उनके दिल में दया उभरी। नरवीर ने आचार्य को देखा, उसके दिल में भक्तिभाव उमड़ा।

नरवीर ने आचार्यमहाराज के चरणों में झुकते हुए अपनी सारी राम कहानी कह सुनाई। आचार्यदेव ने पूरे वात्सल्य और सद्भाव के साथ उसके तप्त मन को सांत्वना दी। अच्छा सज्जन आदमी बनकर जीने की प्रेरणा दी। नरवीर को आचार्यदेव का उपदेश असर कर गया। उसे आचार्यदेव अच्छे लगे। उन की बातें अच्छी लगने लगी। आचार्यदेव के मुनिवृंद के साथ कुछ सद्गृहस्थों का समूह भी था। उनके पास भोजन की सामग्री थी।

नरवीर को भर पेट खाना खिलाया गया। गुरुदेव ने उसे 'एकशिला' नगरी में जाने का निर्देश दिया।

नरवीर एकशिला की ओर चला। आचार्यदेव उनके गंतव्य की ओर चल दिये।

नरवीर एकशिला नगरी में पहुँचा।

वह घूमते-घूमते आढ़र सेठ की हवेली पर जा पहुँचा। आढ़र सेठ के घर पर तो वैसे भी सदाव्रत चलता था। भूखे-प्यासे लोगों के लिए वह आश्रय स्थान था। सेठ ने नरवीर को देखा। उन्होंने नरवीर से खाने के लिए कहा। नरवीर ने कहा : 'सेठ, मुझे कुछ काम बताइये, काम करूँगा। बाद में खाना लूँगा। मुझे मेहनत की रोटी चाहिए। मुफ्त की मिठाई भी नहीं लूँगा मैं।'

सेठ ने उसकी कुलीनता को परख लिया। उसे अपने घर में ही रख लिया। नरवीर घर के सभी कार्य करता है... और एक सज्जन आदमी की तरह जिन्दगी बसर करता है।

इतने में कुछ दिनों बाद आचार्यश्री यशोभद्रसूरिजी विहार करते हुए एकशिला नगरी में पधारे। नरवीर ने उन्हें देखा। वह आचार्यदेव के पैरों में गिर गया। आचार्यदेव ने अत्यन्त वात्सल्य भाव से उस के सिर पर हाथ रखा। नरवीर ने पूछा :

'प्रभो! आप यहाँ पर कहाँ ठहरेंगे? मैं रोज़ाना आपकी सेवा में आऊँगा।'

आचार्यदेव ने अपने रुकने की जगह का निर्देश दिया। नरवीर प्रतिदिन आचार्यदेव के पास जाने लगा।

'एक दिन आढ़र सेठ ने नरवीर से पूछा :

'नरवीर, कुछ दिनों से मैं देख रहा हूँ... तू बाहर जाता है... देर तक बाहर रहता है... कहाँ जाता है, भाई?'

'मेरे उपकारी सेठ! मैं प्रतिदिन मेरे उपकारक गुरुदेव आचार्य श्री यशोभद्र सूरिजी के पास जाता हूँ... उनके चरणों में बैठकर उनके अमृत जैसे मधुर वचनों को सुनना मुझे बड़ा अच्छा लगता है।'

आढ़र सेठ को बड़ी खुशी हुई। उन्होंने नरवीर से कहा : 'मैं भी तेरे साथ तेरे गुरु के दर्शन करने के लिए आऊँगा।'

आढ़र सेठ और नरवीर दोनों गुरुदेव के पास गये। आचार्य श्री की वाणी सुनकर आढ़र सेठ भाव-विभोर हो उठे।

फिर तो प्रतिदिन का यह कार्यक्रम हो गया। आढ़र श्रेष्ठी ने बारह व्रतमय गृहस्थ धर्म अंगीकार किया।

आढ़र श्रेष्ठी ने एक भव्य आलीशान जिनमंदिर का निर्माण किया।

यशोभद्रसूरिजी के पावन कर कमलों द्वारा भगवान महावीरस्वामी की सुन्दर नयनरम्य प्रतिमा प्रतिष्ठापित की। भव्य उत्सव रचाया।

आचार्यदेवश्री को विहार कर के अन्यत्र जाना था पर आढ़र सेठ के अति आग्रह से उन्होंने एकशिला नगरी में ही चातुर्मास बिताने का निर्णय किया।

चातुर्मास में जैसे जोरशोर से बारिश बरसती है... वैसे आचार्य भगवंत की उपदेश वाणी बरसने लगी।

आढ़र सेठ का दिल नाच उठता है।

नरवीर का मन बल्लियों उछलता है।

सेठ और नौकर दोनों साथ ही रोज़ाना परमात्मा का पूजन करते हैं।

सेठ और नौकर रोज़ाना गुरुदेव का उपदेश सुनते हैं।

पर्युषण महापर्व का आगमन हुआ।

सेठ के साथ नरवीर रोज़ाना मंदिर जाता है। सेठ अपने घर से लाई हुई पूजन सामग्री से पूजा करते हैं। एक दिन नरवीर का मन हुआ... अपनी कमाई के पैसों से प्रभु की पूजा करने का। उस के पास पाँच कौड़ियाँ थी।

उससे उसने मालिन से फूल खरीदे, और भावपूर्वक परमात्मा की पुष्पपूजा की। भक्ति का उल्लास उछलने लगा।

संवत्सरी के दिन सेठ-सेठानी और घर के सभी व्यक्तियों ने उपवास किये। नरवीर ने भी उपवास किया। पारणे के दिन मुनिराज को भिक्षा देने के पश्चात् सेठ के साथ नरवीर ने पारणा किया। घर के सभी लोग नरवीर को अपना साधर्मिक बन्धु मानते हैं, पारणे के प्रसंग पर उसे साग्रह खिलाते हैं, पारणा करवाते हैं।

उसी दिन शाम को अचानक नरवीर के पेट में पीड़ा उठती है... दर्द गहराता जाता है... उस वक्त आढ़र सेठ और उसका पूरा परिवार नरवीर के समीप बैठकर उसे अन्तिम आराधना करवाते हैं, नवकार मंत्र सुनाते हैं।

नरवीर समताभाव में मृत्यु का वरण करता है। मरकर वह राजा त्रिभुवनपाल का छोटा पुत्र कुमारपाल होता है।'

अपने गत जन्म की दास्तान सुन कर राजा कुमारपाल स्तब्ध हो उठे। वे पूछते हैं :

'गुरुदेव, आढ़र सेठ का क्या हुआ?'

'गुरुदेव ने कहा :

आढ़र सेठ की भी मृत्यु होती है... और उनकी आत्मा मनुष्य का जीवन पाती है, और वे ही हैं अपने उदयन महामंत्री।'

'राजन्, अब समझ में आया न कि उदयन मंत्री को तुम्हारे ऊपर इतना प्यार क्यों है? उसका कारण मिल गया न ?'

'भगवान्! मेरे उन परम उपकारी यशोभद्रसूरीजी का क्या हुआ?'

'वे भी कालधर्म (मृत्यु) पाकर मनुष्य के रुप में अवतरित हुए हैं... और यहाँ पर तुम्हारे सामने बैठे हुए हैं।'

'ओह्! आप ही मेरे गुरुदेव!' कुमारपाल की आँखें हर्ष से नाच उठी। वह खड़ा हो गया। आचार्यदेव के उत्संग में उसने अपना सिर रख दिया। आचार्यदेव बड़े वात्सल्यभाव से उसके सिर पर आशीष बरसाते रहे। उसका मस्तक सहलाते रहे।

'राजन्, अब तुम्हें सुख-दुःख के कार्य कारण भाव समझाता हूँ। सुनिए।'

- उस धनदत्त ने शिशु हत्या की इसलिए राजा सिद्धराज के भव में उसे

संतानप्राप्ति नहीं हुई। धनदत्त को तुम्हारे प्रति वैर का अनुबन्ध था, बदले की भावना थी, इसलिए इस जन्म में भी तुम्हारे प्रति वह दुश्मनी रखता रहा।

- गत जन्म में मेरा और आढ़र सेठ का तुम्हारे प्रति काफी वात्सल्य भाव था, इसलिए इस जन्म में भी हमारा हृदय तुम्हारे प्रति वात्सल्य से भरा है।

- तुमने पूर्वजन्म में पाँच कौड़ी के अठारह फूलों से परमात्मा की भावभक्ति पूर्वक पूजा की थी, इसलिए इस जन्म में तुम्हें अठारह इलाकों का राज्य प्राप्त हुआ।

- पूर्वजन्म में तुमने काफी लूट-खसोट की थी इसलिए इस जन्म में तुम्हें सिद्धराज के भय से दर-दर भटकना पड़ा और कष्टों को सहना पड़ा।

यह तुम्हारा पूर्व जन्म, जैसा मुझे त्रिभुवनस्वामिनी देवी ने मुझ से कहा, वैसा मैंने तुम्हें बताया है।

यदि मेरे कथन में तुम्हें जरा भी संदेह या कौतूहल हो तो किसी भी राजपुरुष को एकशिला नगरी में भेजकर तलाश करवा लो। आढ़र सेठ के लड़कों के घर में 'स्थिरा' नाम की एक वयोवृद्धा नौकरानी अभी भी जिन्दा है, उसे इस बारे में पूछने पर वह सब कुछ बता सकेगी।'

कुमारपाल ने कहा :

'गुरुदेव, आप तो स्वयं सर्वज्ञ जैसे सूरिदेव हो। इस कलियुग में सर्वज्ञ की भाँति भूतकाल और भविष्यकाल की बातें कहनेवाला आपके अलावा दूसरा है कौन? देवी की वाणी कभी झूठी हो नहीं सकती, फिर भी केवल उत्सुकता से... कौतूहल से मेरे गुप्तचरों को 'एकशिला' नगरी में भेजकर उस वृद्धा दासी की तलाश करवाऊँ तो?'

'बड़ी खुशी के साथ।' गुरुदेव ने कहा।

गुप्तचर पहुँचे एकशिला नगरी में। आढ़र सेठ के लड़कों से मिले। स्थिरा दासी से मिले। उसे सारी बातें पूछी। आढ़र सेठ के द्वारा निर्मित जिनमंदिर को देखा।

गुप्तचरों ने लौटकर राजा कुमारपाल से निवेदन किया : 'गुरुदेव ने जैसा कहा है... वैसा ही हमने वहाँ पर सब देखा और वैसी ही जानकारी मिली।'

राजा कुमारपाल ने भरी राजसभा के बीच गुरुदेव को 'कलिकाल सर्वज्ञ' की पदवी से विभूषित किया।

❖ ❖ ❖

२६. सूरिदेव का स्वर्गवास

कुमारपाल ने आचार्यदेव से पूछा :

'प्रभु, मेरी मुक्ति कब होगी?'

आचार्यदेव ने कहा :

'राजन्, इस जन्म का आयुष्य पूरा करके, मृत्यु के पश्चात् तुम देव बनोगे। महासमृद्धिवान देव का भव तुम्हें मिलेगा। विपुल सुखभोग के बीच तुम्हारा मन आसक्ति में डूबेगा नहीं... तुम अनासक्त बने रहोगे।

- पृथ्वी पर के शाश्वत् तीर्थों की यात्रा करोगे।

- नंदीश्वर दीप वगैरह तीर्थों में भव्य भक्ति महोत्सव करोगे।

- महाविदेह क्षेत्र में जाकर तीर्थंकरों की अमृतमयी देशना सुनोगे।

- श्रेष्ठ रूपवती देवियों के साथ नंदनवन में यथेच्छ मौज-मजा करोगे।

- राजन्, 'देवभव का आयुष्य पूरा होगा। तुम इसी भरत क्षेत्र में जन्म लोगे।

- भद्दिलपुर नगर में राजा शतानंद की रानी धारिणी की कुक्षि में पुत्र रूप में जन्म लोगे। तुम्हारा नाम 'शतबल' रखा जाएगा।

- शतबल बचपन से ही सारी कलाओं में निष्णात होगा।

- बृहस्पति-सा वह विद्वान होगा।

- युवावस्था में वह राजा बनेगा और अपने समग्र राज्य में अहिंसा धर्म का प्रचार-प्रसार करेगा।

- अपने अद्‌भुत पराक्रम से वह अनेक राज्यों को जीत लेगा।

- उस अरसे में इस भरत क्षेत्र में आनेवाली चौबीशी के प्रथम तीर्थंकर श्री पद्‌मनाभ स्वामी विचरण करते होंगे।

एक दिन वे विचरण करते हुए भद्दिलपुर में पधारेंगे। राजा शतबल को समाचार मिलते ही वे तीर्थंकर को वंदना करने के लिए जाएँगे।

'प्रभु की अमृतमयी वाणी सुनकर शतबल राजा विरक्त हो उठेंगे, अनासक्त बनेंगे। तीर्थंकर के श्री चरणों में दीक्षा ग्रहण करेंगे। साधु जीवन स्वीकार करेंगे।

- वे तीर्थंकर के ग्यारहवें गणधर बनेंगे। कठोर तपश्चर्या कर के वीतराग-सर्वज्ञ बनेंगे।

- क्रमशः आयुष्य पूर्ण कर के वे मुक्त हो जाएँगे।

अर्थात् राजन्! तुम्हारी मुक्ति तीसरे भव में होगी।

'मैं तीसरे भव में मुक्ति को प्राप्त करूँगा', यह बात सुनकर राजा को अनहद आनन्द हुआ। उसका हर्षोल्लास निरवधि होकर उछल रहा था। गुरुदेव के चरणों में पुनः-पुनः वंदना करके वे राजमहल पर गये।

रात की बेला थी। नीरव शान्ति से वातावरण सोया हुआ था।

आज कुमारपाल ने गुरुदेव के चरणों में ही रात बिताने का निश्चय किया था।

कुमारपाल ने गुरुदेव से कहा :

'प्रभो, अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। मुझे लगता है...कि अब मैं ज्यादा नहीं जिऊँगा। गुरुदेव मेरे पास सब कुछ है... एक पुत्र के अलावा। इसलिए स्वाभाविक ही मुझे चिन्ता बनी रहती है कि मेरे पश्चात् उत्तराधिकारी कौन होगा? यदि आप कुछ निर्णयात्मक सूचन करें तो उसे राज्य सौंप कर... मैं जिन्दगी के अन्तिम दिनों समता रस में निमग्न रहूँ। आपके श्री चरणों में बैठकर शेष जीवन पूर्ण करूँ... यही मेरी हार्दिक इच्छा है।'

नजदीक में ही बालचन्द्र मुनि सोये हुए थे। वे स्वभाव से कुछ तिकड़मबाज और इधर का उधर करनेवाले थे। सोने का ढोंग करते हुए वे राजा-गुरुदेव का वार्तालाप ध्यान से सुनने लगे। राजा के उत्तराधिकारी का मामला सुनकर वे चौकन्ने होकर वार्तालाप का एक-एक शब्द सुनने लगे।

गुरुदेव ने पूछा :

'राजन्, तुम्हारी भावना उत्तम है। शेष जीवन शान्ति-समता से गुजारने की और राज्य उत्तराधिकारी को सौंप देने की बात मुझे भी अच्छी लगी। परन्तु क्या तुमने कभी सोचा है कि तुम्हारा राज्य सम्हाल सके वैसा पुरुष तुम्हारे आसपास है कौन?'

राजा ने कहा :

'एक है, मेरा भतीजा अज़यपाल और दूसरा है मेरा भानजा प्रतापमल्ल!'

गुरुदेव उन दोनों कुमारों को जानते थे। कुछ पल सोचकर उन्होंने कहा :

'राजन्, अजयपाल के विचार अच्छे नहीं हैं। उसे धर्म जरा भी पसन्द नहीं है। धर्मस्थान उसे अच्छे नहीं लगते हैं।' यदि उसे राज्य सत्ता मिलेगी तो वह उन्मत्त बनेगा और पहला काम वह धर्मस्थानों को ध्वस्त करने का करेगा!

मंदिरों को तोड़ेगा। साधुपुरुषों की अवहेलना करेगा...इसलिए अजयपाल तो राजा बनने के लिए अयोग्य है। उसे राजा नही बनाया जा सकता!

हालाँकि प्रतापमल्ल भी धर्मात्मा नहीं है... पर वह धर्म का विद्वेषी या विरोधी नहीं है। राजा होने के अन्य गुण भी उस में दिखाई देते हैं।'

राजा ने कहा : 'जैसी आपकी आज्ञा है, वैसा ही मैं करूँगा।'

रात उपाश्रय में बिताकर सबेरे राजा राजमहल में गये। उनका मन काफी हलका हो चुका था।

बालचन्द्र मुनि के मन में गुरुदेव हेमचन्द्रसूरि के प्रति न तो भक्ति थी... न श्रद्धा थी... परन्तु घोर द्वेष था। उनकी महत्वाकांक्षाएँ जबरदस्त थीं। बालचन्द्र मुनि की दोस्ती अजयपाल के साथ थी। वे उसे सीढ़ी बनाकर ऊपर उठना चाहते थे, प्रसिद्ध होना चाहते थे।

रात में गुरुदेव ने कुमारपाल के सामने अजयपाल के बारे में बुरी बातें कहीं, इससे बालचन्द्र मुनि को गुरुदेव पर बड़ा गुस्सा आया।

सबेरे-सबेरे... बालचन्द्र मुनि अजयपाल के महल पर पहुँच गये। रात की सारी बात उसे ओर ज्यादा मिर्चमसाला डालकर कह दी। अजयपाल ने कहा :

'मुनिराज, अच्छा किया... तुमने रात के एकान्त में सारी बात सुन ली। तुम तो मेरे परम मित्र हो। जब मैं राजा बनूँगा तब तुम्हें मेरे गुरुपद पर स्थापित करूँगा। जैसे वर्तमान में हेमचन्द्रसूरि कुमारपाल के गुरुपद पर हैं वैसे ही।'

पाटन के राजपरिवार में षडयंत्रों का बनना बिगड़ना चालू हो गया। खटपटे प्रारम्भ हो गयीं। महाराजा का मन इन सब बातों से काफी व्यथित रहने लगा। पर उनके मन में जो धर्मचिन्तन चल रहा था... उस धर्मचिन्तन के प्रभाव से वे स्वस्थ रह सकते थे।

वैसे भी कुमारपाल की उम्र ८० बरस की हो चुकी थी। उनके मन में चिन्ता थी गुजरात के अभिनव उन्नत संस्कारों के रक्षण की। वैसे ही उन्हें अपने परलोक की भी चिन्ता थी।

हेमचन्द्रसूरि के पट्ट शिष्य थे रामचन्द्रसूरि। रामचन्द्रसूरि अपने गुरुदेव की विचार परम्परा और उनकी इच्छा को भलिभाँति समझनेवाले एवं उसका संवर्धन करने वाले थे। वे निडर एवं स्वातंत्र्यप्रिय थे। उनमें तेजस्वी प्रतिभा और प्रकाण्ड विद्वत्ता का समन्वय था।

आचार्यदेव श्रीहेमचन्द्रसूरिजी ने रामचन्द्रसूरि को विधिवत् अपना अनुगामी नियुक्त किया। चूँकि उनकी स्वयं की उम्र ८४ साल की हो चुकी थी। उन्हें अपना मृत्यु निकट के भविष्य में ही दिखता था।

रामचन्द्रसूरि को उत्तराधिकारी बनाया गया, यह बात बालचन्द्र मुनि को तनिक भी सुहाई नहीं। गंदी राजनीति की हरकतें चालू हो गई। धर्म-साहित्य और संस्कार के मूल्य गौण हो गये। खटपट और सत्ता के जहर ने धार्मिक स्थानों पर अपना कब्जा जमा लिया।

आचार्य श्रीहेमचन्द्रसूरिजी जैसे ज्ञानयोगी थे वैसे ही वे चुस्त क्रियायोगी भी थे। उन्होंने अपने जीवन में ज्ञानक्रिया का समन्वय किया था। वे अक्सर छट्ठ-अट्ठम (दो उपवास-तीन उपवास) का तप करते रहते थे।

मृत्यु का समय नजदीक जानकर उन्होंने तमाम साधुओं को अपने पास बुलाया। राजा कुमारपाल भी आ पहुँचे। पूरा जैन संघ एकत्र हो गया।

- आचार्यदेव ने सभी के साथ क्षमापना की।

- सभी को धर्म का उपदेश दिया।

- महाराज कुमारपाल ने खड़े होकर गुरुदेव के चरणों में वंदना की और गद्गद् स्वर से कहा :

'प्रभो, श्रेष्ठ अन्तःपुर, समृद्ध राज्य और अनुमप दुनियावी सुख तो जनम-जनम में मिल सकते हैं, पर आप जैसे सद्गुरु का मिलना बड़ा मुश्किल है, दुर्लभ है। आपने मुझे केवल धर्म ही नहीं दिया है, अपितु मुझे जीवन भी दिया है। आपने मेरा कल्याण ही कल्याण किया है। आपने मेरे ऊपर अनन्त उपकार किये हैं... प्रभो! उन सब उपकारों का बदला मैं किस तरह चुका पाऊँगा? इस अगाध मोहसागर में डूबते हुए मुझे आपके अलावा दूसरा कौन बचाएगा? गुरुदेव, मैंने आपके चरणों की आराधना की है... उपासना की है। उस आराधना का यदि कुछ फल मुझे मिलना हो तो बस जन्मोजन्म तक आप ही के श्री चरणों का सानिध्य मिले। आप ही मेरे गुरुदेव बनें।'

कुमारपाल छोटे बच्चे की भाँति बिलख पड़े।

गुरुदेव की आँखें भी सजल हो उठीं। उन्होंने कहा :

'राजन्! धीरज रखिये, मेरी मृत्यु के पश्चात् तुम्हारी मृत्यु दूर नहीं है। मृत्यु के समय सभी जीवात्माओं के साथ क्षमापना करना। और मेरी तरह अनशन ले लेना।

- गुरुदेव ने अनशन किया। खाना-पीना बन्द कर दिया।

- आँखें मूँदकर पद्मासनस्थ बनकर परमात्मा के ध्यान में निमग्न हो गये।

- युवा वर्ग के नृत्य बन्द हो गये।

- श्रावक-श्राविकाओं के रास थम गये।

- गायकों के गीत-संगीत बन्द हो गये।

- बिरुदावलियों के गायक मौन हो गये।

- सर्वत्र खामोशी... नीरव चुप्पी छा गयी।

- आचार्यदेव उत्कृष्ट धर्मध्यान में लीन हो गये। और उन्होंने अपने प्राणों का त्याग किया।

गुरुदेव का स्वर्गवास हुआ।

- कुमारपाल बेहोश होकर जमीन पर ढेर हो गये।

- जब वे होश में आये... उनके करुण रुदन ने समग्र पाटन को रुला दिया। राजा रोये... प्रजा रोयी... साधु-संन्यासी रोये... भोगी और संसारी रोये।

संघ ने कीमती शिबिका-पालकी तैयार करवायी।

श्रावकों ने गुरुदेव के शरीर को नहलाया। चंदन का लेप किया। श्वेत वस्त्रों में शरीर को लपेटा और शिबिका में बिराजित किया।

पाटन के राजमार्ग पर से श्मशान यात्रा गुजरी। हजारों... लाखों... स्त्री-पुरुष श्मशान यात्रा में जुड़े।

- सूर्य भी फीका हो गया।

- दिशाओं में शून्यावकाश छा गया।

- चंदन की लकड़ियों से बनी चिता पर सूरीश्वरजी का पार्थिव देह रखा गया।

महाराजा कुमारपाल ने चिता में अग्नि प्रदीप्त किया।

आचार्य रामचन्द्रसूरिजी ने आँसू बहाते हुए गद्गद् स्वर में कहा :

'आज ज्ञान का सागर सूख गया। ज्ञानसत्र बन्द हो गया। पृथ्वी अज्ञान के अंधकार में डूब जाएगी। मिथ्यात्व के विषवृक्ष पनपेंगे। प्रभो... आपके बिना हम अनाथ हो गये।'

गुरुविरह की वेदना ने सभी को आक्रंद से आलोड़ित कर दिया।

❖ ❖ ❖

आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा तीर्थ
Acharya Sri Kailasasagarsuri Gyanmandir
Sri Mahavir Jain Aradhana Kendra
Koba Tirth, Gandhinagar-382 007 (Guj.) INDIA
Website : www.kobatirth.org
E-mail : gyanmandir@kobatirth.org

ISBN : 978-81-89177-10-2